ब्रिटिश [illegible] रहस्य

D.

ब्रिटिश राज रहस्य

लेखक---

ठाकुर राजकिशोरसिंह बी० ए० बी० एल०।

भूतपूर्व भारतमित्र संयुक्त संपादक तथा अग्रसर संपादक।

प्रकाशक—

श्रीकालीपदघोष

भारतमित्र प्रेस।

कलकत्ता।

१९२७

प्रथमवार १०००] [मूल्य १)

भूमिका



इङ्गलैएड शासक है और हिन्दुस्थान शासित। हिन्दुस्थानमें रहनेवाली शासित जनता ३२ करोड़ है और सात हजार मील दूर इङ्गलैएडसे आकर इसपर शासन करनेवाले हाकिम करीब एक लाख या हिन्दुस्थानके वास्तविक शासनकर्त्ता सिविलियनोंका ख्याल करें तो इङ्गलैएडके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री लायड जार्जके शब्दोंमें केवल २५०० अंगरेज इस देशपर शासन कर रहे हैं। जब हिन्दुस्थान स्वतन्त्र हो जायगा और स्वतन्त्र हिन्दुस्थानके इतिहासमें ब्रिटिशकालीन वार्त्ताका क्रमबद्ध इतिहास एक प्राचीन स्मृतिकी बात हो जायगा, उस समय हमारी सन्तान जब यह पढ़ेगी कि इतने थोड़े अंगरेज इतने बड़े देशपर शासन करते थे तो वे इस बातको उसी तरह पौराणिक प्रसङ्ग समझेंगे जैसे हम भीष्मद्वारा प्रति दिन दस दस हजार महारथियोंके मारे जानेकी बात, हनुमानद्वारा धवलागिरि पर्वत उठाये जानेकी बात आदिको समझते हैं। क्योंकि यह बात ऐसी असम्भव और ऐसी अस्वाभाविक है कि केवल तर्क इसे स्वीकार नहीं करेगा। पर हम जो इस समय रहते हैं, पदपदपर अपनी पराधीनता अनुभव करते हैं। वे इसे इतना सत्य समझते हैं

जितना चट्टानके अस्तित्वको वह मनुष्य सत्य समझेगा जिसका सिर उससे टकरा दिया जाय। फिर भी यदि वस्तुस्थितिको छोड़ केवल तर्कसे काम लें तो यह अवस्था हमें उसी प्रकार अस्वाभाविक आज भी जान पड़ेगी जितनी अस्वाभाविक भारतवर्षके स्वतन्त्र होनेके पाँच हजार वर्ष बाद यह जान पड़ेगी या उस समय यह जान पड़ती जब अंगरेज व्यापारी अपने तिजारतके लिये स्थान पानेको हिन्दुस्थानी राजाओंका दरबार करते फिरते थे।

यह अवस्था जो इतनी अस्वाभाविक है कि इसके नहीं रहनेपर लोग इसका होना असम्भव समझते, किस प्रकार उपस्थित हुई? अर्थात् हिन्दुस्थान और इङ्गलैण्डका यह वर्त्तमान सम्बन्ध किस प्रकार उत्पन्न हुआ? यह प्रसङ्ग इतना कौतूहलपूर्ण है कि एकमात्र कौतूहलवश भी इसके जाननेका परिश्रम सार्थक समझा जा सकता है। पर अपनी स्वतन्त्रता चाहनेवाले हम भारतवासियोंके लिये और हमें परतन्त्र रखना चाहनेवाले अंगरेजोंके लिये इस सम्बन्धका वास्तविक कारण जानना सबसे अधिक व्यावहारिक महत्वकी बात है। साधारणतः संसारके किसी देशका इतिहास पढ़कर हम यही जानते हैं कि एक देश दूसरे देशके अधीन तभी होता है जब अधीन करनेवाले देशके लोग अपने बलसे अधीन होनेवाले देशके लोगोंको लड़ाईमें हरा देते हैं। इसलिये हिन्दुस्थानके विषयमें भी यह धारणा स्वाभाविक ही हो जाती है कि प्रायः अंगरेज

लेखकों और राजनीतिज्ञोंकी यही धारणा है। सिडेनहम, ओडायर जैसे लोग आज भी कहा करते हैं कि तलवारके बल हमने हिन्दुस्थान पाया है और तलवारके ही बल हम इसे अपने अधीन सदा रखेंगे।

अधिकांश हिन्दुस्थानी जनताकी धारणा भी यही थी। अब असहयोग आन्दोलनके बाद यह धारणा बहुत कम हो गयी है। पर गदरके बाद हिन्दुस्थानमें अंगरेजी राज सुदृढ़ होनेके बाद तथा कांग्रेसके प्रारम्भकालके लोगोंकी धारणा ऐसी ही थी। कांग्रेस सन् १८८५ में स्थापित हुई थी। पर सिलीकी पुस्तक १८८३ में ही प्रकाशित हुई। इस पुस्तकमें सिलीने हिन्दुस्थान और इङ्गलेण्डके सम्बन्धके सच्चे स्वरूप और कारणका जो वर्णन किया है वह ऐतिहासिक घटनाओंके मूलतत्व समझनेमें उसकी शक्तिका विशेष परिचायक है। पुस्तक पढ़नेपर पाठकोंको मालूम हो जायगा कि किस उत्तमता और स्पष्टतासे उसने यह प्रमाणित किया है "अंगरेजोंने तलवारके बल हिन्दुस्थान नहीं जीता है, क्योंकि इसके उपयुक्त शक्ति उनमें थी ही नहीं। सच्ची बात यह है कि हिंदुस्थानने स्वयं अपनेको हराकर अंगरेजोंके अधीन अपनेको कर दिया है। इसी प्रकार अंगरेज हिन्दुस्थानपर अपने बलसे शासन नहीं करते। जिस दिन वे बलसे शासन करना चाहेंगे उसी दिन उनका यह राज्य नष्ट हो जायगा। जो देश तलवारसे जीता नहीं गया है उसका शासन भी तलवारसे नहीं हो सकता।

हिन्दुस्थान अंगरेजोंने हिन्दुस्थानियोंकी फूट और सहयोगसे पाया है। उसपर शासन भी वे उसी प्रकार करते हैं। जिस दिन शासनकार्य्यमें हिन्दुस्थानी अंगरेजोंके साथ सहयोग करना लज्जाकी बात समझ लेंगे उसी दिन यह साम्राज्य नष्ट हो जायगा।"

सिलीने हिन्दुस्थानपर अंगरेजी शासन स्थापित होने और वर्तमान रहनेका जो यह कारण बतलाया वह अक्षरशः सत्य है। कांग्रेसके प्रारम्भकालमें लोगोंको ब्रिटिश राज्यके आधारका स्पष्ट ज्ञान नहीं था। एक अंगरेज ग्रन्थकारके सारा रहस्य इस प्रकार खोलकर रख देनेसे उस समयके कार्य्य-कर्त्ताओंको अपनी स्थिति और शक्तिका ज्ञान प्राप्त करनेमें बड़ी सहायता मिली और देशके राजनीतिक आन्दोलनको भी प्रगति मिली। अन्तको करीब ४० वर्षके बाद सन् १९२० में देशने सामूहिक रूपसे अंगरेजी शासकोंके प्रति असहयोग नीतिका अवलम्बन किया जिसकी आशङ्का सिलीने की थी।

पर सिलीने यह पुस्तक इस उद्देशसे नहीं लिखी थी कि इससे हिन्दुस्थानका कल्याण हो। उसने इङ्गलैण्डके लाभकी दृष्टिसे ही इङ्गलैण्डवालोंको हिन्दुस्थानके सम्बन्धका वास्तविक ज्ञान कराया था जिसमें वे भ्रममें पड़ हिन्दुस्थान खो न बैठें। अंगरेजोंने इससे या अन्य ऐसे साहित्योंसे शिक्षा ग्रहण की यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि भारतसचिव लार्ड बर्कनहेड आज भी अंगरेजी तलवारकी डींगें हांकते हैं। हिन्दुस्थान

तलवारके बल जीता नहीं गया है इसलिये अंगरेज इसे तलवारके बल जीतागया समझकर इसका तलवारसे शासन कराना चाहेंगे तो यह राज्य नष्ट हो जायगा। अपनी ओरसे उनको ऐसी गलती बचाना और उनका ऐतिहासिक अज्ञान दूर करना ही उसका उद्देश हो सकता है। इसीलिये सभी बातोंको ठीक समझते रहनेपर भी गलत और भ्रमपूर्ण परिणाम लोगोंके दिलमें बैठानेका प्रयत्न उसने किया है। पहली बात उसने जो बतलायी हैं वह दया और उदारताके नाममें राजनीतिक अत्याचारकी बातका समर्थन है जिसके द्वारा ब्रिटिश राजनीतिज्ञ संसारको हिन्दुस्थानके सम्बन्धमें धोखा देना चाहते हैं। उसने इसे प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया है कि ब्रिटेनको हिन्दुस्थानसे लाभ कुछ भी नहीं है बल्कि इसके कारण ब्रिटेनका उत्तर-दायित्व बहुत बढ़ गया है। "पर मनुष्य और उसी प्रकार जातिको अपने स्वार्थकी अपेक्षा दूसरोंके स्वार्थका ही अधिक ध्यान रखना कर्त्तव्य है। इसलिये ब्रिटेनको इस उत्तरदायित्वसे घबड़ाकर हिन्दुस्थान छोड़ नहीं देना चाहिये बल्कि हिन्दुस्थानके कल्याणका ध्यान रख उसे वहां शासन करना चाहिये।" उसने यह भी दिखलानेका प्रयत्न किया है कि हिन्दुस्थानमें अंगरेजी राज्यका उद्देश व्यापार नहीं था। सिलीकी ये बातें आज भी ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंकी जबानपर रहती हैं। पर उनका भीतरी पोल इस प्रकार खुल गया है कि उनके धोखेमें अब कोई भी हिन्दुस्थानी नहीं आ सकता और इन बातोंको दुहराना उनकी

बेहयाई ही समझी जाती है। इसलिये उनका खण्डन विशेष-रूपसे यहां करनेकी आवश्यकता नहीं है। फिर भी मैं यहां एक अमेरिकन प्रोफेसर ए० डेमाङ्गनकी राय दे देता हूं जिससे पाठकोंको मालूम हो जायगा कि सिलीने ब्रिटेनके जिस निःस्वार्थ उत्तरदायित्वकी बात कही है वह कैसी असत्य है। उक्त प्रोफेसरने लिखा है:—

"धन शोषणके लिये हिन्दुस्थान एक ही देश हैं। देशकी सम्पत्ति प्रचुर है और आबादी भी बहुत अधिक है। इस प्रकार उसके शासकोंको धन और रक्षाका सुयोग साथ साथ प्राप्त है। हिन्दुस्थानके ही बूतेपर ब्रिटेनके साम्राज्यका अस्तित्व हैं। सुदूर पूर्वके देशोंसे ब्रिटेनका जो व्यापार होता है उसका पड़ाव हिन्दुस्थान ही है। हिन्दुस्थानके कारण ब्रिटिश जहाजी बेड़ेको जलमार्गकी कठिनाई नहीं है। हिन्दुस्थान ब्रिटेनको सेना देता है, हिन्दुस्थानी सिपाही ब्रिटेनके लिये चीन और दक्षिण अफ्रिकामें लड़ते हैं। गत जर्मन महायुद्धमें हिन्दुस्थानने १० लाखसे अधिक मनुष्य दिया जिसमें करीब एक लाख मारे गये। ब्रिटेनके बने मालोंके लिये हिन्दुस्थान बढ़ा ही उत्तम बाजार हैं। उसके दोतिहाई माल इङ्गलैण्डसे ही आते हैं। ब्रिटिश साम्राज्यमें उत्पन्न होनेवाले गेहूंमें सैकड़े ५१ गेहूं, ५८ सैकड़े चाय और ७३ सैकड़े काफी हिन्दुस्थानसे ही आता है। हिन्दुस्थानके कारखाने, खान, चायबगान और रेलोंमें अंगरेजी पूंजी लगी हुई है। सम्भवतः ३५ करोड़ पौण्डका सूद हिन्दुस्थान

इङ्गलैण्डको देता है। हिन्दुस्थान ब्रिटिश अफसरोंको वेतन देता है और वे वेतनकी बचत इङ्गलैण्ड भेजते हैं। हिन्दुस्थान सरकारी ऋणका सूद, अफसरोंके पेन्शन और शासनव्ययकी रकमसे ब्रिटेनका खजाना भरता है। प्रति वर्ष हिन्दुस्थान इङ्गलैण्डको ३ करोड़ पौण्ड देता है। किसी देशका धन शोषण ऐसा कभी नहीं हुआ था।" पाठक अमेरिकन प्रोफेसरकी इस रायसे समझ सकते हैं हिन्दुस्थानसे ब्रिटेनको क्या लाभ है। कई अंगरेज लेखकोंने भी इस बातका समर्थन किया है। वर्तमान भारतसचिव लार्ड बर्कनहेडने ही १९२० ई० में लिखा था—"ब्रिटेनको हिन्दुस्थानसे सदा अत्यधिक खाद्य पदार्थ और व्यापारके लिये कच्चा माल मिलता रहा है। ब्रिटेनका सबसे अधिक माल हिन्दुस्थानमें ही बिकता है। महायुद्धके पहले ब्रिटेनका फी सैकड़े ६० माल हिन्दुस्थानमें बिकता था।" इस प्रकार यह कहना कि ब्रिटेनको हिन्दुस्थानसे लाभ नहीं है सत्यकी हत्या करनी है। ब्रिटेनकी यह शक्ति, यह साम्राज्य सब हिन्दुस्थानकी बदौलत हैं। हिन्दुस्थान ब्रिटेनके हाथसे निकल जाय तो ब्रिटेनका स्थान संसारके राष्ट्रोंमें बहुत नीचे हो जायगा। केवल राजनीतिक लाभ ही नहीं है, बल्कि ब्रिटेनका वैभव भी हिन्दुस्थानके ही कारण है और इसे तो ब्रिटेनके कई प्रतिष्ठित पत्रोंने भी माना है कि ब्रिटेनकी जनता अपनी जीविकाका आठवां हिस्सा हिन्दुस्थानसे पाती है।

इसके प्रतिकूल ब्रिटिश राजमें हिन्दुस्थानका आर्थिक,

राजनीतिक, धार्म्मिक और नैतिक ह्रास जिस प्रकार हुआ है वैसा पहले कभी नहीं हुआ था। हिन्दुस्थानमें ब्रिटेनकी सबसे बड़ी कीर्ति रेल, तार आदि गिनायी जाती है। पर यह आँखमें धूल झोंकना है। आजसे सत्तर अस्सी वर्ष पहले स्वयं इङ्गलैण्डमें ये चीजें नहीं थीं और आज चीन, जापान आदिमें भी ये चीजें हैं यद्यपि वहां ब्रिटिश राज्य नहीं है। इसलिये इन चीजोंके वैज्ञानिक आविष्कारके पहले उनका प्रयोग कहीं भी न था और उनके आविष्कारके बाद हर जगह उनका प्रयोग हो सकता है इसमें ब्रिटिश राजकी कोई विशेषता नहीं है।

सिलीका दूसरा परिणाम इससे कहीं अधिक भ्रमपूर्ण है। अंगरेज राजनीतिज्ञ जानते हैं कि हम हिन्दुस्थानपर अपने बलसे शासन नहीं कर रहे हैं और न छलके द्वारा हमारा शासन स्थायी रह सकता है। एक राजाकी सारी सम्पत्ति छीन कर उसे गरीब बनानेका काम बल या छलसे हो सकता है। पर जब-तक वह अपनेको राजा समझता रहेगा आततायीको चैन नहीं है, क्योंकि वह राज वापिस करनेका प्रयत्न कर सकता है। इसलिये निष्कण्टक राज्य करनेका तरीका यही है कि उसका मस्तिष्क ऐसा बदला जाय कि वह समझने लगे कि मैं भिखमंगा ही पैदा हुआ था। मैं राजा कभी नहीं था। इतना ही नहीं बल्कि उसे यह समझा दिया जाय कि उसके सात पुश्तके लोग भी भिखमंगे थे तो और अच्छा। क्योंकि फिर राजा होनेका ख्याल उसे नहीं आवेगा और दुनिया भी भिखमंगेके वंशजको

राज्य न देनेके कारण आततायीको बुरा नहीं कहेगी। इसी नीतिका अनुसरण कर प्रायः अंगरेज लेखक हिन्दुस्थानियोंको और संसारको यह बतलानेका यत्न करते रहते हैं कि हिन्दुस्थानियोंमें स्वशासनकी योग्यता नहीं है और इतना ही नहीं, जहांतक इतिहासकी गति है यही जान पड़ता है कि वे सदासे परतन्त्र रहते आये हैं। इसलिये अंगरेजी राज चाहे अच्छा हो या बुरा यह अराजकतासे अच्छा है। और हिन्दुस्थानसे अंगरेजी राज्य यदि उठ जायगा तो किसी अन्य विदेशीका राज्य हो जायगा ऐसी अवस्थामें अंगरेजी राज्यका होना ही क्या बुरा है ?

सिलोने भी इसी नीतिका अनुसरण किया है। उसने बड़ी योग्यता और बड़ी खोजके साथ यह प्रमाणित किया है कि अंगरेजोंके राज्यका आधार हिन्दुस्थानमें बहुत निर्बल है और जिस दिन हिन्दुस्थानी चाहेंगे कि अंगरेज हिन्दुस्थानसे चले जायं उसी दिन उन्हें चला जाना होगा, अपनी सारी शक्ति लगा कर भी वे इस दुर्घटनाको नहीं रोक सकते। फिर भी उसने बड़े परिश्रम और तर्कसे यह प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया है कि हिन्दुस्थानसे ब्रिटिश राज हटनेकी कोई आशङ्का नहीं है और ऐसे निर्बल आधारपर अवलम्बित रहनेपर भी हिन्दुस्थानमें ब्रिटिश राज्य एक प्रकारसे अचल है। क्योंकि परम्परासे विदेशी शासनमें रहनेके कारण हिन्दुस्थानियोंकी राजनीतिक चेतना नष्ट हो गयी है इसलिये वे सामूहिक रूपमें ऐसा चाहेंगे

ही नहीं कि ब्रिटिश शासन नष्ट हो जाय। उसने यहांतक कह डाला है कि ब्रिटिश राज्यमें अत्याचार तो नहीं है पर यदि अत्याचार हो तो भी ब्रिटिश शासनपर सङ्कट आनेकी आशङ्का नहीं है। "यह ठीक है कि हिन्दुस्थानकी जनसंख्या बहुत अधिक है और अत्याचारसे वह असन्तुष्ट हो जाय तो ब्रिटिश राज्य नष्ट करनेकी शक्ति उसमें है। पर वह अत्याचार सह लेगी और अपनी इस शक्तिका उपयोग नहीं करेगी। उसे ऐसा अत्याचार सहनेका अभ्यास हो गया है। यदि वह अत्याचार सहकर केवल प्राणकी रक्षा कर सकेगी तो करेगी नहीं तो वह मर जायगी पर विद्रोह कभी नहीं करेगी।" अपने तर्कके समर्थनमें उसने रूस और चीनकी महान जनताका प्रमाण दिया है जो जार और तातारी सम्राटोंका अत्याचार सदियोंसे सहती चली आयी है।

रूसी और चीनी जनताके सम्बन्धमें सिलीको ऐसा भ्रम हुआ तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। स्वयं रूसके जार और चीनके तातारी सम्राटोंकी धारणा भी यही थी इसीलिये वे मनमाने अत्याचार करते थे। पर रूसके जारके वंशमें अब कोई उनके लिये रोनेवाला भी नहीं रहा और चीनके तातारी सम्राटके वंशज वहांकी जनताकी दयापर साधारण मनुष्यकी तरह अपनी जिन्दगी बिता रहे हैं। सिली भी यदि रूसकी बोलशेविक क्रान्ति और चीनकी क्रान्ति देखनेके लिये जीता होता तो उसका यह भ्रम दूर हो जाता। पर जनताको निर्बल

समझ शासकके अत्याचारके समर्थन करनेवालोंका भ्रम अब दूर हो गया है और ऐसे तर्कका खण्डन कार्य्यरूपमें हो चुका है।

अब रही हिन्दुस्थानकी परम्परागत पराधीनताकी बात। इसका कारण हिन्दुस्थानके इतिहासकी जानकारीका न होना है जिसकी मात्रा स्वार्थबुद्धिके कारण और बढ़ जाती है। अंगरेज लेखक हिन्दुस्थानका ऐतिहासिक काल दो हजार वर्षसे ही मानते हैं। इसके लिये उनकी विशेष शिकायत नहीं की जा सकती। जिसकी अपनी सभ्यता सौ वर्षसे भी अधिककी नहीं है, जिनका प्रथम और अन्तिम युग ही वर्तमान युग है जिसके आरम्भ हुए अभी १९०० वर्ष हुए वे दूसरी किसी जातिको कितनी पुरानी मान सकते हैं? इस प्रकार विदेशी हिन्दुस्थानकी अवस्थाकी आलोचना २००० वर्षके इतिहासपर ही करेंगे। पर उनके ऐसा करनेसे हिन्दुस्थानके इतिहासका यही काल नहीं हो जायगा और न हिन्दू अपने वर्तमान और भविष्यका आधार इसी कालके इतिहासको बनावेंगे। दो हजार वर्षका ही इतिहास हिन्दुस्थान और हिन्दू जातिका इतिहास नहीं है। वह केवल आजसे दो हजार वर्ष पहलेका इतिहास है जो हिन्दूजातिके इतिहासका एक बहुत छोटा अंश है।

फिर भी इस दो हजारमेंसे एक हजार वर्षके इतिहासमें ऐसी कोई बात नहीं है जिसके कारण हिन्दुओंको लज्जित होना पड़े। इस जमानेमें विदेशी आक्रमणकारी आये, पर वे या तो

हार कर लौट गये या गल पचकर यहीं रह गये। हाँ! पिछले एक हजार वर्षका इतिहास जिसे मुसलमान भारत का इतिहास कहते हैं हिन्दुओंके गौरवकी बात नहीं है। पर इस इतिहासका रूप भी हमारे सामने ठीक नहीं रखा जाता। जिस समय मुसलमानोंका आक्रमण हिन्दुस्थानपर हुआ उस समय मुसलमान शक्ति संसारमें बड़ी प्रबल थी। इसके प्रवाहमें बड़े बड़े राष्ट्र नष्ट हो गये। स्पेनतक इस्लामी झण्डा गड़ गया। मिश्र, पारस आदिकी प्राचीन जातियां नष्ट होकर सदाके लिये मुसलमान बन गयीं। हिन्दुस्थानको इस शक्तिका मुकाबला करना पड़ा। उस समय हिन्दूराष्ट्र और हिन्दूजातिकी उन्नतिकी अवस्था नहीं अवनतिकी अवस्था थी। इस अवनतिकी अवस्थामें भी हिन्दूजातिने ऐसी प्रबल शक्तिका सामना जिस बहादुरीसे किया इससे इसकी स्वाभाविक उत्कृष्टता सिद्ध होती है। मुसलमान आक्रमणकारी आये, हिन्दू उनसे लड़े, वे नष्ट हो गये, फिर दूसरे आये, फिर हिन्दू उनसे लड़े। इस प्रकार बार बार आनेवाले इस प्रवाहका हिन्दुओंने सामना किया। ऐसा कोई मुसलमान बादशाह नहीं हुआ जो सारे हिन्दुस्थानका शासक हुआ हो या शान्तिपूर्व्वक राज कर पाया हो। हिन्दू बराबर लड़ते रहे। मुसलमान आक्रमणकारियोंके साथ इस प्रकार हिन्दुओंकी लड़ाई सात सौ वर्षतक चलती रही। अन्तको मुसलमान नष्ट हो गये। हिन्दुओंने विजय पायी और मरहट्टोंके प्रभावसे अटकसे कटकतक एक बार हिन्दू झण्डा

फहराया गया। इस प्रकार अंगरेजी राज्यके पहले हिन्दुओंको पराधीन या विजित मानना ऐतिहासिक भूल है। अंगरेज इसे बिलकुल नहीं समझते हों यह बात नहीं है। क्योंकि उनके साथ भी हिन्दुओंकी लड़ाई हुई है और वे जानते हैं कि आज यदि यहां अंगरेजी राज न होता तो हिन्दू राज ही होता। पर हिन्दुओंके मनमें पराधीनताकी वृत्ति उत्पन्न करनेके लिये वे जान बूझकर ऐसी बातें लिखा करते हैं।

तीसरी बात जिसके खण्डनकी आवश्यकता है एक राष्ट्रीयताकी बात है। सिलीने कहा है कि यदि एक राष्ट्रीयताका केवल भाव ही हिन्दुस्थानमें आ जाय तो अंगरेजी राज्य आपसे आप नष्ट हो जायगा। उसकी यह बात भी सोलह आने सच है। १८५७ का गदर यथेष्ट राष्ट्रीय नहीं था। बहुत थोड़े सिपाही और कुछ जमीन्दार सरकारके विरुद्ध हुए थे। इतनेमें ही कुछ अंगरेज लेखकोंके कथनानुसार अंगरेज हिन्दुस्थानसे बोरिया बिस्तर बाँधनेको तैयार थे। १९२१ के असहयोग आन्दोलनमें एक राष्ट्रीयताके भावका एक उबाल देशमें आया था इसीमें बम्बईके भूतपूर्व गवर्नर सर जार्ज लायडके शब्दोंमें स्वराज केवल एक ईञ्च बाकी था और वाइसराय लार्ड रीडिङ्ग महात्मा गान्धीसे समझौता करनेको दौड़ पड़े थे। पर फिर सिलीने यहां भ्रम उत्पन्न किया है। उसने कहा है हिन्दुस्थानमें एक राष्ट्रीयता स्थापित नहीं हो सकती है। भूतकालमें नहीं हुई है और भविष्यमें इसके लक्षण दिखाई नहीं देते।

भूतकालकी चर्चा करते हुए उसने कहा है हिन्दुस्थानमें अंगरेजोंके पहले एकतन्त्र राज्य कभी कायम नहीं हुआ था। अंगरेजोंका हिन्दुस्थानमें एकतन्त्र राज्य है ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ब्रिटिश भारतके बाहर भी हिन्दुस्थानी प्रदेश बहुत बड़ा हैं। पर इसे छोड़ भी दें तो भी इसके कारण हिन्दुस्थानमें एक राष्ट्रीय शासन स्थापित करनेकी अयोग्यता हिन्दुस्थानके प्राचीन इतिहाससे प्रमाणित नहीं की जा सकती। स्वयं इङ्गलैण्डमें (स्काटलैंण्ड, वेल्स और आयरलैण्ड तो अलग थे ही) आठवीं शताब्दीतक अलग अलग सात राज्य थे, नैपोलियनके समयतक जर्म्मनी भिन्न भिन्न राज्योंमें बंटा था, पर इसके कारण आज अंगरेज़ोंमें या जर्म्मनोंमें एक राष्ट्रीयता स्थापित करनेकी अयोग्यताको कोई अंगरेज नहीं मानेगा। यद्यपि इन देशोंका क्षेत्रफल देखनेसे यह बात बड़ी ही हास्यास्पद है, पर प्राचीन हिन्दुस्थानकी तो यह अवस्था थी भी नहीं। जिस समय ब्रिटेनके लोग जङ्गली अवस्थामें थे उस समय यहां चन्द्रगुप्त और अशोक जैसे सम्राट थे जिनके राज्यका विस्तार ब्रिटिश राज्यके विस्तारसे कम न था और उस समयमें जब रेल तार आदि नहीं थे इतने बड़े साम्राज्यका ऐसा अच्छा प्रबन्ध करना जैसा कि उस समयके विदेशी यात्रियोंके वर्णनसे भी मालूम होता है, हिन्दुओंकी योग्यताका ही काम था। उसके पूर्व्व पौराणिक कालमें भी हम चक्रवर्त्ती राजाओंकी कथा सुनते हैं। मुसलमानोंके पूर्व्वतक हिन्दुओंमें यह शक्ति बहुत

अधिक थी। राजाओंकी बात तो दूर रही, सन्यासी श्रीशङ्कराचार्य्यने अकेले सारे देशका सङ्गठन कर डाला था।

मुसलमानोंके कालमें जैसा कि हम कह चुके हैं हिन्दुओंकी शक्ति पहलेसे क्षीण हो गयी थी। उनमें अनेक दुर्गुण आ गये थे। फिर भी हिन्दुओंकी सङ्घशक्ति बिलकुल नष्ट नहीं हुई थी। पृथ्वीराज मुहम्मद गोरीसे अकेले नहीं लड़े थे। मुगलराज नष्ट करनेवाला मरहट्टासङ्घ था। अन्तको रणजीत सिंहने पञ्जाबके छोटे छोटे सरदारोंको मिला सङ्घ कायम किया था। सारा हिन्दुस्थान एक झण्डेके नीचे खड़ा होकर नहीं लड़ सका तो इसका अधिकांश दोष उस समयमें वैज्ञानिक आविष्कारकी कमी थी जिसके कारण खबर एक छोरसे दूसरे छोरतक इतना शीघ्र नहीं पहुंच सकती थी और भिन्न भिन्न प्रान्तके लोग इतना शीघ्र इकट्ठे नहीं हो सकते थे। इसका कारण एक जातीयताका अभाव नहीं था। काश्मीरमें ब्राह्मणोंपर होनेवाले प्रत्येक अत्याचारकी चोट मद्रासके नेयरोंपर लगती थी। विदेशियोंकी प्रत्येक हारसे सारे देशमें आनन्दका स्रोत उमड़ता था।

इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीयताका प्रासाद खड़ा करनेके लिये पुरानी नींव बहुत मजबूत है। पर केवल नींवसे कुछ नहीं होता। उसके लिये ईंट, पत्थर, सुरखी, गारा आदि सामानके सिवा राज, मजूरों और शिल्पियोंकी भी आवश्यकता है। इन उपकरणोंके अभावमें पुरानी नींव बेकार है। इसलिये

यह देखना होगा कि क्या राष्ट्रीयता निर्माण करनेवाले उपकरणोंका यहां अभाव है? प्राय: अंगरेज लेखक इसका अभाव मानते हैं। प्रोफेसर सिलीने भी ऐसा ही माना है। एक धर्म्म, एक भाषा, एक राजनीतिक स्वार्थ और एक जातीयता ये ही चार राष्ट्र निर्माणके लिये चार मुख्य तत्व हैं। इन चारों या इन चारोंमेंसे एकके आधारपर भी देशकी जनताका सङ्गठन किया जा सकता है।

इन चारोंमेंसे एक धर्म्मका होना राष्ट्रीय निर्माणके लिये सर्वश्रेष्ठ उपकरण है। धर्म्मके नाममें जो उत्साह और बल आता है वह अन्य प्रकारसे नहीं आता। पर साधारणतः यह धारणा इस समय फैला दी गयी है कि हिन्दुस्थानके हिन्दुओंमें एक धर्म्म नहीं है। पर यह बात बिलकुल भ्रमपूर्ण है। हिन्दू-जातिमें पन्थ कई हो गये हैं पर वे पन्थ हैं धर्म्म नहीं। सारी हिन्दूजातिका धर्म्म एक और अखण्ड है। आचार आदि भी प्राय: समान हैं। शिवाजी और गुरुगोविन्द सिंह आदिने धर्म्मके नामपर हिन्दुओंका सङ्गठन किया था और आगे भी हिन्दू इसके नामपर सङ्गठित किये जा सकते हैं। सिलीने भी माना है कि धर्म्मके रूपमें एक अंकुर है जो बढ़कर राष्ट्रीयताके वृक्षका रूप धारण कर सकता है। दूसरा मुख्यतत्व एक भाषा है। साधारण दृष्टिसे देखनेसे हिन्दुस्थानकी एक भाषा नहीं है। पर जो भाषा एक नहीं है वह बोलचालकी भाषा है। बोलचालकी भाषाकी ऐसी विभिन्नता अन्यत्र भी पायी जाती है। वेल्सके

लोग जो अंगरेज़ी बोलते हैं वह साधारण अंगरेज़ीसे भिन्न है। पर हिन्दुस्थानमें इस बोलचालकी भाषाकी एकता भी इधर बढ़ती जा रही है। हिन्दी बोलनेवाला मनुष्य प्रायः सारे भारतवर्षका भ्रमण कर आ सकता है और भाषाकी विभिन्नताके कारण उसे कष्टसहन नहीं करना पड़ेगा। पर इस बोल-चालकी भाषा और भिन्न भिन्न प्रकारके अक्षरोंके होते हुए भी सारे हिन्दुस्थानकी साहित्यिक एकता है। बङ्गला, मराठी, तेलगू और हिन्दी आदि भारतीय भाषाओंके ग्रन्थ भिन्न भिन्न लिपिमें होते हुए भी अपने पाठकोंपर समान प्रभाव डालते हैं, समान प्रेरणा उत्पन्न करते हैं। इन पुस्तकोंके लेखकोंकी विचार-धारा एक ही स्रोतसे निकली है। रूपका समान आधार वही भारतीय संस्कृति और वही परम्परा है जो संस्कृतयुगसे चली आयी है। सबकी कथाएं रामायण और महाभारतसे ली गयी होती हैं। सबके आदर्शोंपर राम और कृष्णादिके आदर्शोंका ही छाप हैं। इसलिये ऊपरी विभिन्नता होनेपर भी भाषासे होनेवाला प्रभाव एक ही है। इसके सिवा एक लिपि और एक भाषा बना डालनेका विचार सभी प्रान्तोंमें बहुत आगे बढ़ चला है और जबतक अंगरेज़ीके उठनेका समय आयगा तबतक हिन्दी उनका स्थान लेनेको पूर्ण तैयार हो जायगी इसमें सन्देह नहीं।

सिलीने अपनी इस पुस्तकमें यह एक विचित्र बात कही है कि भारतीय इतिहासमें ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जिसके

आधारपर भारतीय स्वतन्त्रताके लिये उद्योग करनेवाले जनतामें जागृति उत्पन्न करा सके। मैं उसके इस कथनका कोई अर्थ नहीं समझता। हिन्दुओंने देशको माताका स्थान दे रखा हैं और "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" कहा है। इस जन्मभूमि जननीके लिये प्राण देनेवाले और उसके शत्रुओंको नष्ट करनेवाले वीरोंकी गाथाओंसे भारतीय इतिहास परिपूर्ण है। महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, गुरुगोविन्द सिंह वीरवैरागी बांदा आदि जैसे अनेक वीर मुसलमानी राज्यके समयमें भी हुए हैं जो संसारके किसी देशके राष्ट्रीय योद्धाओं और नेताओंकी तुलनामें सवाई उतर सकते हैं। उनकी कीर्त्ति और गुणगाथाएं आज भी भारतीय रगोंमें नया खून सञ्चारित कर सकते हैं। धर्म्म जो राष्ट्रका प्राण है उसके लिये सर्वस्व न्यौछावर करनेकी जो दृढ़ता यहां पायी गयी है वह क्या अन्यत्र पायी जा सकती है? ईसाका बलिदान ईसाई संसारके लिये सबसे बड़ा बलिदान है। ईसाने सत्यके लिये प्राण दे दिया अतएव वे प्रशंसनीय हैं। पर वयसप्राप्त, विचारनेकी शक्ति रखनेवाले ईसाका उस समयके अधिकारियों द्वारा शूलीपर चढ़ाये जानेकी घटना गुरुगोविन्द सिंहके अबोध बालकोंके अपनी धर्म्म-दृढ़ताके कारण जीते जी दीवालकी ईंटोंके बीच चुनवा दिये जानेकी घटनासे क्या अधिक उत्साह उत्पन्न करनेवाली हैं? वीरवैरागी बंदाका अपनी देहसे मांसके लोथ आगमें तपाये हुए लोहोंके सिकचोंसे निकाले जाते हुए भी धीरताके साथ समाधिस्थ बैठे

हुए प्राण विसर्जन करना ईसाके वलिदानसे क्या कम है? फिर भी भारतीय इतिहासके अगणित शहीदोंमेंसे यह केवल दो उदाहरण हैं

हिन्दुस्थानका भूतकाल बड़ा ही गौरवपूर्ण है। इसके प्रशस्त आधारपर भव्य भविष्यका चाहे जितना बड़ा विशाल भवन तैयार किया जा सकता है। पर इसके लिये हमारा वर्तमानकाल यथेष्ट प्रयत्नशील होना चाहिये। हममें अपने परम्परासञ्चित उत्साहोंको जगाकर उसके बलपर भविष्यको खड़ा करनेकी शक्ति होनी चाहिये। वह शक्ति पर्य्याप्तरूपमें इस समय दिखायी नहीं देती। फिर भी हमारा वर्तमान निराशापूर्ण नहीं है। देश और जातिके शुद्ध प्रेममें जीने और इसके लिये मरनेवालोंका जन्म अब भी इस देशमें हो रहा है। हिन्दुस्थान आज भी लोकमान्य और देशबन्धु उत्पन्न कर सकता है। इस अवस्थामें भी जगद्वन्द्य महात्मा यहां उत्पन्न हो सकता है। यही हमारी आशा है। इस आशामें बहुत बल है। इस बलको जनता पहचानती है उसमें देशप्रेमके भावका सम्मान करनेकी धारणा है। इस धारणाको सहयोग आन्दोलनने बहुत कुछ जागरित किया है। १९२१ में स्वराज होनेमें एक इञ्चकी दूरी रह जानेपर भी स्वराजके लिये आशा और विश्वास पूरे बंध गये। आज हिमालयसे लेकर कुमारी अन्तरीपतक और बम्बईसे बर्म्मातक स्वराजकी भावना लोगोंके हृदयमें वर्तमान है। यह ठीक है कि यह सूक्ष्मरूपमें है यह अन्तस्तलमें हैं। पर है, यही क्या कम है? इसके स्थूल और

प्रत्यक्ष होनेमें सन्देह नहीं है, प्रश्न केवल समयका है। समय आवेगा और भारतमें एकराष्ट्रीयता होगी। सिली या उसके समान विचार रखनेवाले चाहे जो भविष्यद्वाणी करते रहें।

इस राष्ट्रीयतामें एक बात बड़ी ही बाधक है। कहा जाता है कि यह सम्भव है कि २२ करोड़ हिन्दू एक हो जायं उसी प्रकार यह भी सम्भव है कि ७ करोड़ मुसलमान एक हो जायं। पर २२ करोड़ हिन्दू और ७ करोड़ मुसलमान एक हो जायंगे यह सम्भव नहीं। इस कथनमें बहुत कुछ सत्यका अंश है। पर यही सत्य ब्रिटिश शासनका प्रकृत बल नहीं है। हिन्दू और मुसलमानोंकी कमजोरी ही उसका बल है। कोई सदा दूसरोंकी कमजोरीपर अपनी शक्ति स्थिर नहीं रख सकता। राज्य कार्य्यमें भेद नीतिसे काम बहुत होता है। भेदनीतिसे मुसलमानोंने हिन्दूओंपर शासन किया और भेदनीतिसे अंगरेज हिन्दू और मुसलमान दोनोंपर राज्य कर रहे हैं। पर भेदनीति क्या कभी सदा चली है? मुसलमान इस समय हिन्दुओंसे अपनेको भिन्न समझते हैं। यह उनकी भूल है। वास्तवमें तो वे भिन्न नहीं हैं। किन्तु सदा कोई मनुष्य भ्रममें पड़ा नहीं रह सकता हिन्दुस्थानके वर्तमान मुसलमानोंमेंसे सैकड़े ९५ तो ऐसे ही हैं जिनके पूर्व्वपुरुष हिन्दू थे। बाहरसे जो मुसलमान आक्रमणकारी आये उनके वंशज तो पाँच सैकड़े भी नहीं है। इस लिये इन मुसलमानोंकी वही जाति, वही इतिहास और वही परम्परा है जो हिन्दुओंकी है। यह एक निर्मूल धारणा मुसल-

मानोंके हृदयमें उत्पन्न करा दी गयी है कि मुसलमानी राज्यमें मुसलमानोंने हिन्दुओंपर अत्याचार किया है इसलिये हिन्दू स्वराजमें मुसलमानोंपर अत्याचार करेंगे। इस कथनका एक ही परिणाम होता है कि मुसलमान स्वराजमें हिन्दुओंका साथ न दें। अधिकांश मुसलमान अभी ऐसा ही समझते हैं। पर यह अवस्था सच्ची नहीं है। बीती बातोंके प्रतिकारके लिये अवसर ढूँढ़ना संसारमें किसी जातिके लिये सम्भव नहीं है। पर यह तो बात ही नहीं है। वर्तमान मुसलमानोंने जिनमें सैकड़े ९५ हिन्दूसे मुसलमान हो गये हैं, मुसलमानो राज्यमें हिन्दुओंपर अत्याचार नहीं किया है प्रत्युत स्वयं उन्हें ही अत्याचार सहना पड़ा है। इसलिये हिन्दू अपने उन भाइओंको क्यों सताना चाहेंगे जो स्वयं मुसलमानी राज्यमें सताये गये हैं। हां, वे अपना स्वरूप भूल गये हैं जिसके कारण उन्हें और उनके भाई हिन्दुओंको भी कष्ट हो रहा है। पर इसमें उनका दोष क्या है? वे अपने रूपको देखते नहीं उसे पहचाने क्यों कर? वे अपना रूप तो हिन्दू जातिमें ही देख सकते हैं। पर हिन्दू जातिपर स्वयं काईका तह इतनी मोटी छा गयी है कि इसमें मुसलमान अपना प्रतिविम्ब नहीं देख सकते। जिस समय हिन्दूजाति अपने दुर्गुणोंको त्याग कर स्वच्छ हो जायगी उस समय मुसलमान जाति भी अपना रूप देख सकेगी और इसके साथ मिल जायगी। पर यदि तर्कके लिये मान भी लें कि ऐसा नहीं होगा तो क्या

यह स्वराज्यके लिये सर्वथा बाधक है? बाईस और सात करोड़की संख्या कुछ भी नहीं है। देशमें इससे भी अधिक हिन्दुओंके रहते हुए कुछ लाख मुसलमानोंने बाहरसे आकर राज्य किया। आज २२ करोड़ हिन्दुओं और ७ करोड़ मुसलमानोंके रहते हुए भी एक लाख अंगरेज दोनोंपर राज्य कर रहे हैं। इसलिये संख्या कोई वस्तु नहीं है यदि वह सङ्गठित न हो। जिस प्रकार सङ्गठनके बल अंगरेज राज्य करते हैं उसी प्रकार सङ्गठन द्वारा देशके कुछ लाख मनुष्य ही स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं और उसकी रक्षा भी कर सकते हैं। इसमें बाधा न तो ७ करोड़ मुसलमानोंसे पड़ेगी न २२ करोड़ हिन्दुओंसे। देशके ३१ करोड़ व्यक्ति मिलकर स्वराज्यके लिए सम्मिलित प्रयत्न करेंगे ऐसी आशा निराधार है। छोटे छोटे देशोंमें भी देशका प्रत्येक व्यक्ति देशकी राजनीतिमें क्रियात्मक रूपसे भाग नहीं लेता। और न ऐसा हिन्दुस्थानमें होगा। पर जिस प्रकार इसके कारण वहांकी स्वतन्त्रता रुकी नहीं उसी प्रकार यहांकी भी नहीं रुक सकती।

भारतीय स्वतन्त्रताके युद्धके समय एक प्रश्न यह भी उठता है कि हिन्दुस्थानमें किस प्रकारका शासन स्थापित होगा। अगरेज लेखकोंकी यह धारणा रही है कि हिन्दुस्थानमें सदा राजतन्त्र राज रहा है। जनता व्यक्तिगत शासन चाहती है। उसे "मा बाप" सरकार जैसा कि ब्रिटिश नौकरशाही अपनेको समझती है, पसन्द है। पर यह जनतन्त्रका युग है।

जिसके लिये भारतीय जनता बिलकुल अयोग्य है। इसलिये कांग्रेस आदिका प्रयत्न जो जनतन्त्र राज्य स्थापित करनेके लिये है सफल नहीं हो सकता। हिन्दुस्थानमें राजतन्त्र राज्य था यह ठीक है, पर वह प्रारम्भ कालसे नहीं था। राजतन्त्रके पहले यहां जनतन्त्र था जो कभी नष्ट नहीं हुआ। जिस समय गङ्गाके दक्षिण ओर मगधका विशाल साम्राज्य था उस समय भी इसके उत्तर ओर कई जनतन्त्र राज्य थे। जनतन्त्रको मानना हिन्दुस्थानमें इतना ही प्राचीन और स्वाभाविक है जितना कि धर्मको मानना। आज भी यह बिलकुल नष्ट नहीं हो गया। प्रत्येक गाँव एक छोटा जनतन्त्र है। हिन्दूजातिकी वे उपजातियां, वैश्य, तेली, नाई, कुम्हार आदि जिनपर अंगरेजी राज्यका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है आज भी जनतन्त्रके आधार पर पञ्चायत द्वारा अपने भीतरी मामले सुलझा लेती हैं। पर यह हिन्दुस्थानी जनतन्त्र पाश्चात्य प्रजातन्त्रसे भिन्न है। पाश्चात्य प्रजातन्त्र जो अंगरेज जातिके विशेष अभिमानकी बात है कोई उत्तम आदर्श नहीं हैं। इसकी बुराइयां अब प्रकट होने लगी हैं। यह प्रजातन्त्र नहीं प्रजातन्त्रके नाममें धनतन्त्र है। शक्ति वहां जनताके हाथमें नहीं धनियोंके हाथमें है। धनके द्वारा वोट खरीदे और बेचे जाते हैं। वाटामली जैसे लोग जो जुआ आदि दोषोंके लिये कैद भोगते हैं धोखा देकर पार्लमेण्टके माननीय सदस्य बन सकते हैं। ऐसे कदाचारपूर्ण प्रजातन्त्रवादका हिन्दुस्थानमें फैलना वांछनीय नहीं है। इसलिये ब्रिटिश

प्रजातन्त्रकी दृष्टिसे हम अयोग्य हैं तो यह कोई दुःखकी बात नहीं है। जो लोग इस शासनप्रणालीके लिये अपनेको योग्य प्रमाणित करनेका प्रयत्न करते हैं वे भूल करते हैं। हिन्दुस्थानका प्रजातन्त्र भारतीय जनतन्त्र है जो भारतीय धारणाके अनुरूप ही होना चाहिये। इस जनतन्त्रमें ज्ञानतन्त्रका अधिक भाग है। हिन्दुस्थानमें जनतन्त्र नष्ट होकर जब राजतन्त्र बना तब राजतन्त्र ज्ञानतन्त्र ही रहा। राज्यका सारा कार्य्य स्वार्थरहित और तपोनिष्ठ मनुष्योंके हाथमें रहा जिन्हें लोकहितके सिवा अपना कोई भी हित नहीं था। राज्य वास्तवमें यही संभालते थे। राजा इनका हुक्म बजा लानेके लिये पुलिसके समान थे। रामचन्द्र और उनके पूर्वज रघुवंशी राजाओंने अपना राज्य गुरु वशिष्ठ जैसे ऋषिके परामर्शसे किया। मौर्य्य सम्राट चन्द्रगुप्तका राज्य वास्तवमें चाणक्यका राज्य था। इतने बड़े राज्यका कर्ताधर्ता चाणक्य झोपड़ियोंमें रहता था और राज्यको सुरक्षित करनेके बाद फिर ब्राह्मणवत् तपमें लग गया। शिवाजी गुरु रामदासकी आज्ञासे राज करते थे जिन्होंने सारे राज्यका दान लेना अस्वीकार कर दिया। अंगरेजी राजनीतिवेत्ताओंके दादा गुरु अफलातूंने दाशनिक राजाकी कल्पना की थी। पर प्लेटोज़ उटोपियाके (*Plato's utopia*'के) हास्यजनक बातोंके सिवा यूरोपको और कुछ न मिला। पर हिन्दुस्थानमें यह ज्ञानतन्त्र बिलकुल व्यावहारिक था। राज्यका सूत्र निःस्वार्थ व्यक्तियोंके हाथमें रहनेसे ही लोकका वास्तविक कल्याण होता है। पर इस समय

ज्ञानतन्त्र स्थापित करना सम्भव नहीं है। महात्मा गांधीके समान व्यक्ति आज अधिक उत्पन्न नहीं होनेपर उनका सर्वथा अभाव भो नहीं है। स्वराज्य हो जानेपर आगे चलकर ज्ञानतन्त्रके आधारपर जनतन्त्र स्थापित हो सकता है। पर इसके लिये हमें भारतीय आधारपर बढ़ना होगा। अंगरेजी फूल सुन्दर होनेपर भी हमें सुगन्ध नहीं दे सकते। इसीलिये औपनिवेशिक स्वराजकी बात जो लोग करते हैं वह मेरी समझमें नहीं आती। इस प्रकारकी धारणा रखनेवाले सम्भवतः यह समझते हैं कि इस प्रकारका स्वराज हमें शीघ्र मिल जायगा। जिस ब्रिटेनने अपने खून अमेरिकनोंके बिना लड़े स्वराज नहीं दिया, वह स्वेच्छासे बेगाने हिन्दुस्थानको स्वराज दे देगा ऐसा मानना इतिहासको भूल जाना है। पर ऐसा सम्भव भी हो तो भी इस प्रकारके स्वराज्यसे हिन्दुस्थानके व्यक्तित्वका पूर्ण विकाश नहीं हो सकता। और जिस स्वराजमें देशका पूर्ण आत्मविकाश नहीं हुआ वह स्वराज्य ही नहीं है। इसलिये भारतीय स्वराज्य आन्दोलनका लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता होनी चाहिये और वह स्वराज्य प्राप्त होनेपर जनतन्त्रके आधारपर चलना चाहिये। ऐसा समझकर हमें आगे बढ़ना है। एक हजार वर्षकी पराधीनता हमें निराश नहीं कर सकती। स्वतन्त्रता ईश्वरप्रदत्त पदार्थ है जिससे कोई भी जाति सदाके लिये वञ्चित नहीं रखी जा सकती। यह बात अंगरेजोंको भी समझना चाहिये और भारतवासियोंको भी जिससे ब्रिटेन और भारतका यह

सम्बन्ध सद्भावके साथ अन्त हो और भारतवर्षको स्वतन्त्रताके साथ साथ संसारमें शान्ति स्थापित हो जाय।

तिलकश्राद्धतिथि, संवत् १९८२
(१ अगस्त १९२५)
कलकत्ता

ठाकुर राजकिशोर सिंह।

प्रस्तावना

एक लम्बी भूमिका लिखनेपर भी जो यह प्रस्तावना लिखनेकी जरूरत पड़ रही है उसका कारण वह परिस्थिति है जिसमें यह पुस्तक प्रारम्भ की गयी थी। १९२१ का साल और विशेषकर उसका दिसम्बर मास भारतीय स्वतन्त्रताके आन्दोलनके इतिहासमें बड़े मार्केका समझा जायगा। जनताकी सम्मिलित शक्तिमें कितना बल होता है इसके व्यावहारिक अङ्गकी एक झलक उस समय हमें देखनेको मिली थी। एक ओर ब्रिटिश सरकारकी शस्त्रबलपर सुसङ्गठित शक्ति थी और दूसरी ओर निरस्त्र जनताका सम्मिलित मत प्रकाश। नौकरशाहीने अपने बलके भरोसे युवराजका साम्राज्यके भावी सम्राटका, धूमधामसे स्वागत करा अपना सिर ऊंचा रखनेका विश्वास किया था और कांग्रेसने जनताके मनोभाव व्यक्त करनेकी नैतिक आशा। पर नौकरशाहीका विश्वास नष्ट हुआ और कांग्रेसकी आशा सफल हुई। युवराजके स्वागतका स्थान स्थानमें बहिष्कार हुआ और साम्राज्यके भावी सम्राटने साम्राज्यके द्वितीय नगर, कलकत्तेमें अन्धकारमें प्रवेश किया, म्युनिस्पैलिटीके लालटेन जलानेवाले कुलियोंतकने उस दिन हड़ताल की। ब्रिटिश शासनमें देशका एकीभूत मत प्रकट होनेका यह पहला ही समय था और इसने देशकी नौकरशाही को एक ओर और देशके शुभचिन्तक राजनीतिक कार्य्यकर्त्ताओंको दूसरी ओर देशके भविष्यका ज्ञान स्पष्ट रूपसे करा दिया। नौकरशाहीने इस स्थितिको बचाने लिये कुछ उठा नहीं रखा। क्रिमिनल अमेण्डमेण्ट ऐक्टकी १७ वीं धारके गैरकानूनी कानून द्वारा उसने देशके सभी स्वयंसेवक दलोंको गैरकानूनी करार दे दिया। इस कानूनके द्वारा स्वर्गीय देशबन्धु दास, पञ्जाबकेसरी लाल

लाजपत राय, त्यागमूर्त्ति पण्डित मोतिलाल नेहरु जैसे सर्व्वमान्य व्यक्तियोंसे लेकर साधारण स्वयंसेवकोंतक करीब ४० हजार व्यक्ति जेल गये। कांग्रेसका सम्बन्ध होना जेल जानेके लिये काफी था। विहारमें जिस समय कांग्रेस स्वयंसेवक दल गैरकानूनी करार दिया गया उससे दो मास पूर्व्वसे मैं सख्त बीमार था। जिस सभामें शामिल होनेके कारण मुझपर मामला चला था वह सभा मैंने बुलायी नहीं थी और शारीरिक कमजोरीके कारण भाषण देना और इसके कार्य्यमें योग देना मेरे लिये असम्भव था। फिर भी मैं परगना कांग्रेस समितिका मन्त्री था इसलिये मैं दोषी माना गया और मुझे छः महीने कड़ी कैदकी सजा दी गयी। मामला जिस समय कचहरीमें पेश हुआ मैं कमजोरीके कारण खड़ा नहीं रह सका।

इसी अवस्थामें मैं बक्सर जेलमें पहुंचा जहां उस समय विहारके करीब २०० राजनीतिक कैदी थे। बाहरसे ही बीमार जानेके कारण जेलमें मेरा स्वास्थ्य बराबर खराब रहता था। ऐसी अवस्थामें लिखने पढ़नेके काममें भी रुचि नहीं थी। पर इसी बीच मुजफ्फरपुर जिलान्तर्गत गंगेयानिवासी मेरे मित्र बाबू मथुराप्रसाद सिंह सिलीका Expansion of England लेकर मेरे पास पहुंचे। सिलीकी पुस्तक १८८३ में प्रकाशित होनेके बाद चाहे जैसी प्रसिद्ध रही हो, पर इधर कुछ वर्षोंसे साधारणतः उसकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं था। पर १९२१ में भारतभक्त मि० ऐण्ड्रूजने समाचारपत्रोंमें तीन खुली चिट्ठियां लिखी थीं जिनमें सिलीकी इस पुस्तकसे उन्होंने असहयोगके समर्थनमें कई अवतरण दिये थे, इस कारण साधारण जनताका ध्यान इस पुस्तककी ओर आकृष्ट हो गया था। मेरे मित्रने यह इच्छा प्रकट की कि मैं हिन्दी जाननेवालोंकी सुगमताके लिये इसका अनुवाद करूं। मैं कमजोरीके कारण स्वयं लिख नहीं सकता था पर उन्होंने जब लिखनेका भार अपने ऊपर लिया तो मैंने हिन्दी भाषान्तर लिखा देना स्वीकार किया। इस प्रकार यह पुस्तक आरम्भ हुई। पर जेलके बाद कांग्रेसके काममें लग जानेसे न तो इसके छपवानेकी चिन्ता हुई और न

पूरी करनेकी। इसके बाद १९१२ के जुलाईमें मैं कलकत्ते आ गया पर यह पुस्तक ज्योंकी त्यों पड़ी रही। अन्तको भारतमित्रके जेनरल मैनेजर बाबू यशोदानन्दन अखौरीकी इच्छा होनेपर "भारतमित्र" प्रेसने इसे छापनेका भार लिया। इस प्रकार पुस्तक जिस समय आरम्भ की गयी थी उसके करीब चार वर्ष बाद यह हिन्दी पाठकोंके हाथमें जा रही है। इस पुस्तकसे किसीको कुछ लाभ हो तो उसका सारा श्रेय मेरे मित्र बाबू मथुराप्रसाद सिंहको ही है।

इस प्रस्तावनामें पुस्तकके अनुवादके विषयमें भी कुछ कह देना जरूरी है। "ब्रिटिश-राज-रहस्य"का प्रधान भाग सिलीकी जिस पुस्तकका अनुवाद है वह पुस्तक इससे बहुत बड़ी है। पुस्तकके दो भाग हैं। पहले भागमें सिलीने भारतेतर ब्रिटिश साम्राज्यके सम्बन्धकी बातें कही हैं। पर उसमें उसने ब्रिटिश साम्राज्यके विस्तारका इतिहास नहीं बतलाया है, बल्कि तत्-सम्बन्धी इतिहास जाननेवालोंको उसके भीतरकी गति बतलायी है। हिन्दी पाठकोंके लिये वह अनावश्यक है इसलिये मैंने उसका अनुवाद नहीं किया पर एक परिशिष्ट लिखकर स्वतन्त्र रूपसे उन्हें इस विषयका व्यावहारिक ज्ञान करानेके लिये संक्षिप्त और उपयुक्त इतिहास दे दिया है। अपनी पुस्तकके दूसरे भागमें सिलीने हिन्दुस्थान सम्बन्धी बातोंको लिखा है। इसमेंसे भी सभी परिच्छेदोंके अनुवादकी आवश्यकता मुझे नहीं जान पड़ी। इसलिये केवल उन्हीं अंशोंका अनुवाद किया गया है जो आवश्यक हैं और वे अंश छोड़ दिये गये हैं जो अब पुराने हो गये हैं। सिलीने अपनी पुस्तकमें अमेरिका, इङ्गलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी और इटली आदि देशके ऐतिहासिक नामों और घटनाओंका उल्लेख जगह जगहपर उदाहरणके लिये किया है। जिन लोगोंके सामने सिलीने व्याख्यान रूपमें अपनी पुस्तक पढ़ी थी उनके लिये और हिन्दुस्थानके विश्वविद्यालयोंके एम० ए० क्लासके विद्यार्थियोंके लिये जिनके इतिहास विषयकी यह पाठ्य पुस्तक है ऐसे उदाहरण उतने कठिन नहीं हैं, पर साधारण हिन्दी पाठकोंके लिये तो उन्हें

समझना कठिन ही होगा। इसलिये मैंने फूटनोट द्वारा ऐसे नामों और घटनाओंको समझा दिया है। फूटनोट पर्य्याप्त हैं पर सम्भव है पाठकोंकी पूरी कठिनाई न समझनेके कारण कोई ऐसा नाम या घटना छूट भी गयी हो जिसपर फूटनोट देना चाहिये था। यदि ऐसा हुआ हो और पुस्तकका यदि दूसरा संस्करण निकालना पड़े तो सूचना पानेपर उनका सुधार कर दिया जायगा। मैं कह चुका हूं "ब्रिटिशराजरहस्य"का प्रधान भाग सिलीकी पुस्तकका अनुवाद है। पर यह अनुवाद शब्द प्रति शब्द अनुवाद नहीं है। कहीं कहींपर कुछ पैरे छोड़ भी दिये गये हैं और कहींपर अनावश्यक रूपसे बड़ा पेरा छोटा भी कर दिया गया है। फिर भी जो विचार इनमें हैं वे उसके हैं और अधिकांशमें भाषा भी उसकी भाषाका हिन्दी रूपान्तर ही है। प्रयत्न करनेपर भी छापेकी भूलें रह गयी। मात्रा टूटकर कई जगह "की"के स्थानमें "का" हो गया है, "ओ"कार आदि भी कई जगह टूट गये हैं। आशा है पाठक ऐसी भूलोंको सुधार लेंगे। अन्तमें यह प्रस्तावना समाप्त करनेके पहले मैं अपने मित्र पण्डित वासुदेव मिश्र और भारतमित्रके जेनरल मैनेजर श्रीयुत बाबू यशोदानन्दन अखौरीको धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूं जिनसे पुस्तकके प्रूफादि संशोधनमें मुझे बड़ी सहायता मिली है।

श्रीकृष्णाष्टमी १९८२
कलकत्ता

ठाकुर राजकिशोर सिंह

ब्रिटिश-राज-रहस्य

प्रथम परिच्छेद

ब्रिटिश भारतका स्वरूप

[यह पुस्तक प्रोफेसर सिलीके *Expansion of England* नामक पुस्तकके हिन्दुस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाले भागका अनुवाद है। इसमें सर्वत्र "मैं" सिली और "हम" अङ्गरेज जातिका बोधक है।]

ब्रिटिश साम्राज्यका विस्तार इस समय बहुत अधिक हो गया है। संसारमें इतना बड़ा साम्राज्य इसके पहले स्थापित नहीं हुआ था। छोटासा इङ्गलैण्ड इस समय बढ़कर इतना बड़ा हो गया है कि इसके अन्तर्गत भूमिखण्डमें सूर्य्यास्त होता ही नहीं। पर इस साम्राज्यका सर्वप्रधान और महत्त्वपूर्ण अङ्ग हिन्दुस्थान है। यह ब्रिटिश राजमुकुटमें सबसे उज्ज्वल रत्न समझा जाता है। परन्तु इस प्रधान अङ्गको प्राप्त करनेके लिये अङ्गरेजोंने इसके अनुरूप कौन कहे, सामान्य प्रयत्न भी नहीं किया था। अङ्गरेज जातिने बड़ी बड़ी सफलताएं प्राप्त की हैं पर ऐसी महान् सफलता कोई नहीं है और न इतने कम प्रयत्नसे कोई प्राप्त हुई है। यह सफलता बिलकुल अनपेक्षित और आकस्मिक है। अन्य जो ब्रिटिश उपनिवेश हैं उनके लिये भी

हमने विशेष यत्न नहीं किया था पर जो कुछ किया गया था वही पर्य्याप्त था। न्यू इङ्गलेण्ड * और वरजिनियामें § जब पहले पहल अङ्गरेज औपनिवेशिक गये तो किसीने नहीं सोचा था कि आगे चलकर वहां एक बड़ा प्रजातन्त्र स्थापित होगा। पर इतना तो अवश्य ही मालूम था कि हम वहां एक नये समाजका सङ्गठन करना चाहते थे जिसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा। उस समय केवल इसके विस्तारका अनुमान हम नहीं कर सके थे। पर हिन्दुस्थानकी बात बिलकुल भिन्न थी। हम चाहते थे कुछ, और हो गया कुछ। प्रारम्भसे ही हमारा उद्देश व्यापार था और व्यापारके ही लिये हम यहां आये थे। राजस्थापन करनेकी बात तो स्वप्नमें भी नहीं आयी थी। यही कारण है कि हिन्दुस्थानमें (१६०० ई०) आनेके समयसे सौ वर्ष बादतक देशी राजाओंसे लड़नेकी कल्पना तक हमने नहीं की। इसके बाद हमने युद्ध किया सही पर इन युद्धोंका उद्देश

---

* प्रथम जेम्स द्वारा निकाले गये पुरिटन सम्प्रदायके लोगोंने १६२० में पहले पहल न्यू इङ्गलैण्डको बसाया।

§ महारानी एलिजाबेथने पहले पहल १५५४ में सर वाल्टर रेलेको अमेरिकामें उपनिवेश बसानेकी आज्ञा दी थी। एलिजाबेथ कुमारी थी इसलिये इस प्रान्तका नाम "वरजिनिया" (कुमारी) पड़ा। नियमितरूपसे प्रथम जेम्सके चारटरसे १६०७ में यह उपनिवेश बसा। इस समय यह अमेरिकाके संयुक्त राज्यमें है।

एकमात्र व्यापार वृद्धि था। देशपर अधिकार जमानेकी बात हमारे विचारोंमें इसके भी पचास वर्ष बाद आयी और तभी इसके लिये हमने लड़ाई भी की। हिन्दुस्थानमें अङ्गरेज इस समय सार्व्वभौम राजा हैं। पर यह पद हमें आजसे लगभग २५ वर्ष* पहले अर्थात् लार्ड डलहाउजीके ही समय (१८४८—५५) प्राप्त हुआ था। इसके पहले हमारा लक्ष दूसरी ओर था पर घटनाचक्रसे हम दूसरे लक्ष पर पहुंच गये। यह बात इस प्रकार अनजानते हुई कि इसके क्रमागत इतिहासका पता लगाना कठिन है। कम्पनीके डाइरेक्टरोंके पत्र और कम्पनीके कागज पत्रोंको देखनेसे पता लगता है कि हिन्दुस्थानमें राज्यस्थापन करनेका उद्देश उनका कभी नहीं था। पर हिन्दुस्थानमें उस समय कुछ ऐसी शक्तियां काम कर रही थीं जिनके वेगको वे रोक न सके और उन्हींके प्रवाहवेगमें यह साम्राज्य स्थापित हो गया। पर ऐसा कैसे हुआ इसका विचार करनेके पहले मैं इस ब्रिटिश राज्यके स्वरूपका विचार करूंगा।

कैनेडा, आस्ट्रेलिया आदिमें हमारे साम्राज्य स्थापित होनेका क्रम यह है कि वहां धीरे धीरे अङ्गरेजोंने आकर बसना आरम्भ किया और कुछ दिनोंमें ये ऐसे प्रबल हो गये कि वहांके आदिम निवासियोंको दबाकर अपना आधिपत्य जमा लिया। हिन्दु-

---

* यह पुस्तक १८९० में प्रकाशित हुई थी। इसके पहले इसके परिच्छेद निबन्धरूपमें पढ़े गये थे जिनका लेखनकाल १८८० है।

स्थानमें यह बात नहीं हुई। इसी लिये कुछ लोग समझते हैं कि ईस्ट इण्डिया कम्पनीने एकके बाद दूसरे देशी नरेशको हरा कर हिन्दुस्थानमें राज्य स्थापित किया। इस प्रकार हिन्दुस्थान अङ्गरेजोंका विजित देश है और वे उसके मालिक हैं।

भूल करनेवालोंके लिये जवाब नहीं है। कितने लोगोंकी तो यह भी धारणा है कि ब्रिटिश उपनिवेशोंका इङ्गलैण्ड स्वामी है। किसी देशका अर्थ सदा वहांके रहनेवाले लोगोंसे समझा जाता है। इस लिये इङ्गलैण्डका अर्थ हम इङ्गलैण्डके मनुष्य समझें और उपनिवेशोंका अर्थ उपनिवेशोंके मनुष्य, तो इङ्गलैण्ड उपनिवेशोंका मालिक है, ऐसा हम नहीं कह सकते क्योंकि मनुष्य समाज कोई सम्पत्ति नहीं है कि उसका कोई मालिक हो। तब यह कहा जाता है कि मालिकसे अर्थ राजाका है और उपनिवेशोंकी जनता इङ्गलैण्डकी प्रजा है। यह भी ठीक नहीं है, यद्यपि इङ्गलैण्डकी सरकार उपनिवेशोंकी सरकारोंके ऊपर है पर उपनिवेशोंके लोग इङ्गलैण्डकी प्रजा नहीं हैं क्योंकि इङ्गलैण्डने उपनिवेशोंको जीत वहांके अधिवासियोंको प्रजा नहीं बनाया है। प्रत्युत्तरका अभाव नहीं होता और लोग कह बैठते हैं कि उपनिवेशके लोग प्रजा नहीं हैं; न सही; पर हिन्दुस्थानके लोग तो अवश्य प्रजा हैं क्योंकि हिन्दुस्थान विजयसे ही महारानी विक्टोरियाके अधीन आया है। यह भ्रम तबतक दूर न होगा जबतक "विजय" शब्दका अर्थ ठीक समझमें न आ जाय। "विजय" शब्द संसारके इतिहासमें बहुत पुराना

है और असभ्य तथा बर्बर जातियोंके समयसे ही यह चला आया है। इस लिये यह समझ लेना चाहिये कि इङ्गलैण्डने हिन्दुस्थानको विजय किया है और इसलिये वह उसका मालिक है, यह कथन कहांतक सही है। जब हम किसी चीज़ वा सम्पत्तिके मालिक होते हैं तो हमें यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि हम ज़िस प्रकार चाहें उस वस्तुका उपभोग करें। यदि हम किसी भूमिके मालिक हैं तो हम उस भूमिमें उत्पन्न होने-वाली फसल बँटवा लेते हैं या मालगुजारीपर उसे जोतनेको देते हैं। प्राचीन कालमें "विजयका" ठीक यही अर्थ था। जब कोई किसी देशको जीतता था तो ठीक इसी प्रकार वहांका वह मालिक बन जाता था और देशकी सारी भूमिका वह जमीन्दार हो जाता था। रोमन लोग जिस देशको जीतते थे वहांकी सारी भूमि जब्तकर रोमन सैनिकों और नागरिकोंमें बाँट देते थे। हिन्दुस्थानमें इङ्गलैण्ड इस प्रकार भूमि बाँट नहीं सका है।

किसी देशको विजित देश जाननेका एक और मार्ग है। वह यह कि विजित देश विजेता देशको कर दे। पर फिर भी उस करके स्वरूपको समझना होगा। करसे अर्थ केवल उस करसे हो जो देशकी सरकार चलानेके लिये लिया जाता है तो यह बिजित देशकी विशेषता नहीं है। देश चाहे स्वतन्त्र हो या परतन्त्र सरकार चलानेके लिये वहांकी जनताको कर देना ही पड़ता है। कर देनेके कारण किसी देशको विजित या करद

हम तभी कह सकते हैं जब शासन व्ययसे अधिक कर उसे देना पड़ता हो। मिश्र * इसी प्रकारका एक करद देश है। यहांका शासक खेदीव है पर वह रूमके सुलतानके अधीन है और प्रति वर्ष मिश्रको रूमके सुलतानके पास पराधीनतासूचक कुछ नियत धन भेजना पड़ता है जो किसी रूपमें लौटकर मिश्र नहीं आता।

इस प्रकारका कर वैसा ही है जैसा जमीन्दारको रैयतसे मिलनेवाली मालगुजारी। इस लिये इस रूपमें यदि कोई देश कर दे तो निःसन्देह वह देश विजेता देशका करद है। अब देखना यह है कि क्या हिन्दुस्थान इस रूपमें इङ्गलैण्डका करद देश है? इसका उत्तर है, नहीं। कमसे कम प्रत्यक्ष रूपमें नहीं है। (अप्रत्यक्ष रूपमें हिन्दुस्थानकी अवस्था करद देशसे भी बुरी है। हिन्दुस्थानको अपने शासनव्ययके हिसाबसे कर नहीं देना पड़ता बल्कि साम्राज्यके लाभकी दृष्टिसे। इस प्रकार आवश्यकतासे कहीं अधिक कर देना पड़ता है। हिन्दुस्थानसे प्रत्यक्ष रूपमें भी ३० करोड़ रुपया प्रति वर्ष इङ्गलैण्ड जाता है जो किसी रूपमें लौटकर नहीं आता)। शासन व्ययके लिये

---

* मिश्र अब रूमके सुलतानके अधीन नहीं है। मिश्रमें कुछ अङ्गरेज बसे थे; उनकी रक्षाके बहाने अङ्गरेजोंने १८८२ ई० में मिश्रकी राजधानी काहरा पर कब्जा कर लिया। सुदान पर अङ्गरेजोंने १८९५ में अधिकार जमाया। जगलूल पाशाके प्रयत्नसे अब मिश्रको स्वाधीनता मिल गयी है।

हिन्दुस्थानमें भी कर लिया जाता है और इङ्गलैण्डमें भी, इसलिये हिन्दुस्थान उतना ही करद देश है जितना इङ्गलैण्ड (अन्तर यह है कि इङ्गलैण्डका कर इङ्गलैण्डकी जनताके लाभके लिये उसकी रायसे वसूल और खर्च होता है और हिन्दुस्थानका कर विदेशी नौकरशाही द्वारा वसूल और व्यय किया जाता है जिसमें हिन्दुस्थानकी अपेक्षा इङ्गलैण्डके कल्याण पर अधिक दृष्टि रहती है)। यह बहुधा कहा जाता है और इसमें सत्यका अंश भी है कि इङ्गलैण्डके लिये हिन्दुस्थानको कई प्रकारसे त्याग करना पड़ता है। भुलावा देकर हिन्दुस्थानका धनशोषण किया जाता है। पर यहांपर मैं इसका विचार नहीं कर रहा हूं। मैं यही दिखलाना चाहता हूं कि न्यायतः इङ्गलैण्ड और हिन्दुस्थानमें क्या सम्बन्ध है। इस सम्बन्धका दुरुपयोग कहांतक किया जाता है इस पर विचार करना उद्देश नहीं है। इस लिये जिस प्रकार उपनिवेश इङ्गलैण्डके करद राज्य नहीं हैं उसी प्रकार हिन्दुस्थान भी नहीं है।

यदि यह मान भी लिया जाय कि हिन्दुस्थान और इङ्गलैण्डका वर्त्तमान सम्बन्ध हिन्दुस्थानपर इङ्गलैण्डकी विजय द्वारा ही हुआ है तोभी प्रकट रूपमें इस विजयके आधारपर इङ्गलैण्डने हिन्दुस्थानमें कभी किसी विशेष स्वत्वका दावा नहीं किया है। १८५८ की अपनी घोषणामें महारानी विक्टोरियाने स्पष्ट कहा था "हिन्दुस्थानकी जनताके प्रति हमारा वही कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व है जो अपनी अन्य प्रजाओंके प्रति है।" इसलिये

"विजय" शब्द इङ्गलैण्डको कोई विशेष स्वत्व नहीं देता है और व्यावहारिक रूपमें हिन्दुस्थान एक विजित देश नहीं है। यह सत्य है, इतनी सभ्यता प्राप्त करने पर भी संसारकी असभ्यता दूर नहीं हुई है और न संसारसे अभी युद्ध उठा है। इतना भी नहीं हुआ है कि इसका शीघ्र शीघ्र होना रुक जाय। पर तोभी इसका स्वरूप बहुत बदल गया है। नामके लिये अब भी विजय हो सकती है पर इसका अर्थ बदल गया है। अब किसी राजकोषको लूटने (राजकोष न सही पर व्यापारसे देशोंको लूटनेकी लड़ाई तो अब बड़ी भयङ्करतासे होती है। गत जर्म्मन महायुद्ध धनलोलुपताके ही कारण हुआ था और इसमें होनेवाले अत्याचार किसी भी बर्व्वर जातिके अत्याचारसे बढ़कर थे) या किसी देशकी भूमिको अपनी सम्पत्ति बनानेके लिये लड़ाई नहीं होती। अब विजयका वह प्रभाव नहीं है। इस लिये हिन्दुस्थान विजयसे प्रत्यक्ष रूपमें कोई लाभ नहीं हुआ है बल्कि हमारा उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गया है (यह विचार-सङ्कीर्णता अङ्गरेज जातिके लिये राष्ट्रीय हो गयी है। उदार-चेता अङ्गरेजोंके लिये भी इसका व्यतिक्रम करना कठिन हो जाता है)। इस लिये यह बात बिलकुल भूल जानी चाहिये कि हिन्दुस्थान हमारा व्यावहारिक रूपमें भी विजित देश है। एक समय था जब लोग हिन्दुस्थानको इङ्गलैण्डका अत्युत्कृष्ट अधीनस्थ देश समझते थे और ब्रिटिशराजमुकुटका इसे उज्ज्वल-तम रत्न कहा करते थे। पर अब यह समाज नहीं है और

यह आलङ्कारिक भाषा अब बहुत पुरानी हो गयी है। इस अर्थमें हिन्दुस्थान आज भी इङ्गलैण्डके अधीन है कि अङ्गरेज इसपर शासन करते हैं और शासननीति भी इङ्गलैण्ड ही निश्चित करता है। पर इस अर्थमें यह इङ्गलैण्डका अधीनस्थ नहीं है कि प्रत्यक्ष रूपमें यह उसकी कोई सेवा करता है या उसका बल बढ़ाता है। तब प्रश्न यह उठता है कि हमारे इस साम्राज्यकी फिर आवश्यकता क्या है? क्यों हम इतनी दूर एशियामें जाकर हिन्दुस्थान जैसे महान देशके शासनका कष्ट उठाते हैं? ब्रिटिश उपनिवेशोंकी दूरीका खयाल करके भी यही प्रश्न किया जा सकता है। पर उनके सम्बन्धमें यह प्रश्न ठीक नहीं होगा क्योंकि उपनिवेशके रहनेवाले हमारे खून तथा ब्रिटिश राष्ट्रीयताके विस्तारके परिणाम हैं। यदि ये देश इङ्गलैण्डके समीप होते तो यही अच्छा समझा जाता कि राजनीतिक विषयोंमें वे इङ्गलैण्डसे अलग न हों। पर ऐसा नहीं है। जैसे हिन्दुस्थान दूर है वैसे ही वे उपनिवेश भी दूर हैं। पर दूरीका प्रश्न इस वाष्प और विद्युतके युगमें कोई बड़ी अड़चन नहीं डाल सकता। इङ्गलैण्ड और उपनिवेशोंमें रहनेवाले लोग एक ही जातिके हैं इस लिये इङ्गलैण्डका साम्राज्य वहां होनेमें कोई विषमता नहीं है। इस सम्बन्धमें हिन्दुस्थान और इङ्गलैण्डके बीच पूरब और पच्छिमका अन्तर हैं। संसारकी कोई दो जातियां आपसमें इतनी भिन्न नहीं है जितने अङ्गरेज और हिन्दुस्थानी। भाषातत्वान्वेषियोंने भाषाके आधारपर

कुछ सम्बन्ध ढूंढ़ निकाला है और कहा जाता है कि हिन्दुस्थानी आर्य्यों और अङ्गरेजोंकी भाषा एक ही मूलसे निकली है। पर इसके सिवा दोनोंमें गहरा अन्तर है। हमारी संस्कृति और वंशपरम्परासे उनकी संस्कृति और वंशपरम्परा एक जगह भी नहीं मिलती। हिन्दूधर्म्म और ईसाईधर्म्ममें जो अन्तर है, वह अन्तर ईसाई और मुसलमानधर्म्ममें भी नहीं है।

फिर अङ्गरेजी उपनिवेश संसारके उस भागमें बसे जो प्रायः वीरान था। इस लिये वहांके निवासियोंमें अङ्गरेजोंकी संख्याप्रधानता शीघ्र ही हो गयी और कहीं कहीं पर तो जन-संख्या बिलकुल अङ्गरेजोंकीही हो गयी है। उपनिवेश दो प्रकारके होते हैं। एक तो जैसा अङ्गरेजोंका उपनिवेश है जहां आदिम निवासियोंकी अपेक्षा औपनिवेशिकोंकी संख्या अधिक है। दूसरा जैसा मध्य और दक्षिण अमेरिकामें स्पेनवालोंका * उपनिवेश था जहां स्पेनवालोंकी अपेक्षा आदिम निवासियोंकी संख्या अत्यधिक थी। पर दोनों उपनिवेशोंमें यह बात समान भावसे पायी जाती है कि खूनके नाते वे मातृभूमिसे बंधे रहते

---

* यूरोपके देशोंमें सर्व्वप्रथम स्पेनने ही अमेरिकाका पता लगाया था। अमेरिकाका पहले पहल, १४९२ में कोलम्बसने पता लगाया था। यद्यपि कोलम्बस इटालियन था पर स्पेनके राजाने ही इस काममें इसकी सहायता की थी।

हैं। हिन्दुस्थान इन दोनोंमेंसे किसी प्रकारका भी उपनिवेश नहीं है। हिन्दुस्थानकी जनता और इङ्गलैण्डकी जनतामें कोई रक्त सम्बन्ध नहीं है। यदि इङ्गलैण्ड हिन्दुस्थानमें उपनिवेश बसाना भी चाहता तो इङ्गलैण्ड जैसे अल्प संख्यावाले देशके लिये हिन्दुस्थान जैसे बड़ी जनसंख्यावाले देशमें ऐसा करना असम्भव हो जाता। इसके सिवा प्रकृतिको यह मंजूर नहीं है कि हिन्दुस्थान अङ्गरेजोंका उपनिवेश बने। इसी लिये यहांकी जल-वायु ऐसी है जिसमें अङ्गरेजोंकी वृद्धि हो नहीं सकती।

इस प्रकार इङ्गलैण्डका सम्बन्ध बाह्यरूपमें उपनिवेशोंके साथ जितना स्वाभाविक है उतना ही हिन्दुस्थानके साथ अस्वाभाविक। न तो धर्मकी दृष्टिसे सम्बन्ध है न जातिके बन्धनके कारण। एक व्यापारके स्वार्थका सम्बन्ध अवश्य है पर यह सम्बन्ध तो किन्हीं भी दो देशोंमें होता है। यूरोप और अमेरिकासे हमारा विशेष स्वार्थ है पर सुदूर हिन्दुस्थानसे नहीं। इससे इतना ही हुआ है कि अफगानिस्तान, ईरान और मध्य एशियासे हम सम्बन्ध रख सके हैं जो अन्यथा नहीं होता।

स्वाभाविक हो या अस्वाभाविक अब यह सम्बन्ध स्थापित हो गया है। हिन्दुस्थानमें अङ्गरेजोंने इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित किया है जिसकी तुलना अमेरिकामें स्पेनके राज्य या रोमन साम्राज्यसे भी नहीं हो सकती। इसी सफलतामें हम भूल गये हैं और इसके वास्तविक स्वरूपका हम विचार नहीं करते और न हम इसकी चिन्ता करते हैं कि इतना बड़ा उत्तर-

दायित्व जो हम पर आ गया है उसे हम किस प्रकार पूरा करेंगे। साधारणतः लोगोंकी यह धारणा है कि बाहरी दुनियामें जितने बड़े देश हैं सब एक ही प्रकारके हैं। यदि हिन्दुस्थान एक महान् देश है तो आस्ट्रेलिया * और कैनाडा उससे भी महान् हैं। इसलिये कैनाडा और आस्ट्रेलियाके लिये जब विशेष चिन्ता नहीं करनी पड़ती तो हिन्दुस्थानके ही लिये क्यों की जाय। ऐसा सोचनेवाले एक महत्वके भेदको भूल जाते है। आस्ट्रेलिया और कैनाडा क्षेत्रफलके हिसाबसे महान देश हैं पर इनकी जन-संख्या बहुत थोड़ी है। ये देश केवल इङ्गलैण्डसे ही दूर नहीं है बल्कि संसारके अन्य शक्तिशाली देशोंसे भी दूर हैं। पर हिन्दु-स्थान इनके ऐसा वीरान देश नहीं है। इसकी बस्ती कहीं कहीं पर यूरोपके घने बसे हुए भागोंसे भी घनी है। हम यहां उसी सुगमतासे नहीं चले आये हैं जिस सुगमतासे उपनिवेशोंमें गये हैं। यहां हमें अनेक लड़ाइयां लड़नी पड़ी हैं। दूर रहने पर भी यह देश यूरोपसे अलग नहीं है। हिन्दुस्थानमें फ्रान्सीसियोंके साथ हमें लगातार लड़ना पड़ा। १८३० के बाद केवल हिन्दु स्थानके ही कारण रूससे हमारा बिगाड़ हो गया और हम पूर्वी समस्याओंके जालमें बेतरह फँस गये।

---

* आस्ट्रेलियाका क्षेत्रफल ३१९२२७५ वर्ग मील और जनसंख्या लगभग ६५७०००० और कैनाडाका क्षेत्रफल ३७२९६६५ वर्ग मील और जनसंख्या ८३६१००० है।

इसलिये हिन्दुस्थानकी तुलना नयी दुनियाके कम बसे हुए देशोंसे करनी भूल है। इसकी तुलना यूरोपके देशोंसे होनी चाहिये। इसके आकारका अनुमान हम तभी कर सकते हैं जब इसकी तुलना रोमन साम्राज्यसे करें और रूसको छोड़ यूरोपके अन्य देशोंको एक साथ ध्यानमें लावें। यह साम्राज्य जिसपर हम लण्डनसे बैठे बैठे शासन करते हैं नेपोलियनके उस साम्राज्यसे बड़ा है जिसे उसने अपने प्रबल प्रतापके समय स्थापित किया था। हिन्दुस्थान और नयी दुनियाके देशोंमें केवल विस्तार और जनसंख्याका ही भेद नहीं है। उन देशोंके रहनेवाले जङ्गली थे। उनकी अपनी कोई सभ्यता नहीं थी। पर हिन्दुस्थान एक प्राचीन सभ्यताका देश है और आज भी इसे अपनी सभ्यता, भाषा, धर्म्म, दर्शन और साहित्यका यथार्थ अभिमान है।

यूरोपसे हिन्दुस्थानकी तुलना करने पर हम देखते हैं कि यूरोपमें कई स्वतन्त्र राष्ट्र हैं जिससे यूरोपका गौरव बढ़ गया है। यदि हिन्दुस्थानकी भी यही अवस्था होती तो आज हिन्दुस्थानका नाम उसी गौरवके साथ लिया जाता जिस गौरवसे यूरोपका नाम लिया जाता है। पर हिन्दुस्थानके प्रान्तोंकी, जहां स्वतन्त्र राष्ट्रके बदले एक अङ्गरेज लेफटिनेन्ट गवर्नरका शासन है, तुलना क्षेत्रफल और जनसंख्याके हिसाबसे महत्व पूर्ण है। बङ्गाल प्रान्तकी जनसंख्या ६ करोड़ ६० लाख है यद्यपि इसका क्षेत्रफल फ्रान्सके क्षेत्रफलसे कम है। पश्चिमोत्तर

प्रान्त (संयुक्त प्रदेश) आयरलैण्डको छोड़ कर ग्रेट ब्रिटेनसे क्षेत्रफलमें कुछ कम है। पर इसकी जनसंख्या ग्रेट ब्रिटेनसे अधिक है। मद्रास क्षेत्रफलमें आयरलैण्ड सहित ग्रेट ब्रिटेनसे बड़ा है और जनसंख्यामें इटलीके बराबर है। पञ्जाबकी जन-संख्या स्पेनसे कुछ अधिक है। बम्बई प्रदेशका क्षेत्रफल ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्डके बराबर है यद्यपि जनसंख्या कुछ थोड़ी है। अवध प्रान्त बेलजियम और हालैण्ड दोनोंके मिलाने पर भी बड़ा है। मध्यप्रान्त बेलजियम और हालैण्डके बराबर है। ये तो ब्रिटिश भारतके प्रान्त हुए। इनके सिवा हिन्दुस्थानकी देशी रियासतें हैं जहांकी जनसंख्या अमेरिकाके संयुक्त राज्योंसे अधिक है। यद्यपि देशी रियासतोंमें प्रत्यक्ष रूपमें ब्रिटिश शासन नहीं है पर तोभी हिन्दुस्थानके सार्व्वभौम राजा होनेके कारण अङ्गरेजोंपर इसका उत्तरदायित्व है। इसलिये अङ्गरेजोंका उत्तरदायित्व कितना अधिक बढ़ गया है इसका अनुमान सहज ही हो सकता है।

इस समय इङ्गलैण्डकी जनसंख्या मधुमक्खियोंकी तरह बढ़ रही है। इसके साथ साथ देशके शासनमें जटिलता उत्पन्न होती जाती है। इसके सिवा ब्रिटेनपर अपने विस्तृत औपनिवेशिक साम्राज्यका उत्तरदायित्व है। ऐसी अवस्थामें क्या यह सम्भव है कि हिन्दुस्थानके प्रति ब्रिटेन अपना उत्तर-दायित्व पूरा कर सके? क्या इङ्गलैण्डने इस साम्राज्यके सम्बन्धका प्रारम्भिक ज्ञान भी प्राप्त किया है या कर सकता है?

और नहीं तो क्या प्राचीन साम्राज्योंके शासनका ज्ञान पुस्तकों द्वारा प्राप्त कर हम हिन्दुस्थानका शासन कर लेंगे? ये प्रश्न स्वाभाविक ही उठते हैं और इनके उत्तरपर हिन्दुस्थान और इङ्गलैण्डका सम्बन्ध बहुत कुछ निर्भर है।

अबसे पहले कई साम्राज्य हो चुके हैं पर उनका शासन बराबर चुने हुए कुछ दक्ष शासकोंके हाथ रहा है। रोमका साम्राज्य जब बहुत बढ़ गया तो रोमको अपना प्रजातन्त्र त्याग एक स्वेच्छाचारी शासकके अधीन होना पड़ा और उसकी नागरिक स्वतन्त्रता भी नष्ट हो गयी। आधुनिक कालमें साम्राज्य शासनके नये उपाय कुछ ढूँढ़ निकाले गये हैं और अमेरिकाके संयुक्त राज्यका शासन प्रजातन्त्रके ढङ्गपर ही होता है। पर यहांकी विशेषता यह है कि देश बहुत लम्बा होने पर भी इसके प्रान्त एक दूसरेसे मिले हुए हैं और आगे चलकर जनसंख्या चाहे जितनी बढ़ जाय पर वह एक जातिकी ही रहेगी। यदि संयुक्त राज्यके अधीन समुद्र पारका कोई देश हो जाय जहांकी जनता अमेरिकन जनतासे भिन्न हो तो संयुक्त राज्यका राजनीतिक स्वरूप कई अंशोंमें बदल जायगा। इसलिये संयुक्त राज्य अमेरिकासे इस भारतीय साम्राज्यकी विभिन्नता है। हिन्दुस्थान इङ्गलैण्डसे बहुत दूर है, इसके सिवा इसके शासकों और इसमें विचार स्रोतकी विभिन्नता बहुत अधिक है। रोमन साम्राज्यसे इसकी विभिन्नता यह है कि यहांका शासन केवल दक्ष शासकोंसे नहीं होता। शासनकी बागडोर ब्रिटिश

पार्लमेण्टके हाथ है। पार्लमेण्टके सदस्य साधारणतः सामान्य बुद्धिके मनुष्य होते हैं। इङ्गलैण्डकी राजनीतिक समस्याओंको तो वे अपने स्वार्थ और निकटताके कारण समझ लेते हैं। पर जब उन्हें हिन्दुस्थानकी समस्याओंका सामना करना पड़ता है, जहां सिद्धान्त और नीति दूसरी है तो उनकी बुद्धि काम नहीं देती और वे घबड़ा जाते हैं।

हिन्दुस्थान इङ्गलैण्ड और उपनिवेशोंसे भी इस प्रकार भिन्न है कि इसके शासनमें बराबर नये सिद्धान्तों और नीतियोंका प्रयोग करना पड़ता है। साधारण ब्रिटिश जनता इसको समझ नहीं सकती इसलिये भारतसरकारकी ओर वह क्रोध और निराशासे देखती है। उसके लिये हिन्दुस्थानका शासन अङ्गरेजोंके लिये अयोग्य है, यह नौकरशाही सरकार है, यहां कर वसूल करनेका ढङ्ग भी विचित्र है। नमक और अफीमके व्यापारमें भारतसरकारका इजारा है। सरकार अपनेको सार्व्वभौम जमीन्दार समझती है और अन्य सैकड़ों ऐसा काम करती हैं जो ब्रिटिश शासनपरम्पराके विरुद्ध हैं।

लोग कह सकते हैं, कि किस उद्देशकी पूर्तिके लिये ऐसा किया जाता है, क्योंकि मैं कह चुका हूं कि हिन्दुस्थानसे इङ्गलैण्डको प्रत्यक्ष कोई लाभ नहीं है। तब यह देखना होगा कि अप्रत्यक्ष रूपमें क्या लाभ है। दोनों देशोंमें व्यापार सम्बन्ध बहुत अधिक बढ़ गया है। यदि भारतवर्षमें विद्रोह हो जाय या किसी प्रकार यह देश इङ्गलैण्डके हाथसे निकल

जाय और भारतीय बन्दरगाहमें अङ्गरेजी व्यापारी जहाज न आ सकें तो अङ्गरेज व्यापारियोंको प्रति वर्ष ६ करोड़ पौंड या ९० करोड़ रुपयेकी हानि हो (इस समय इङ्गलैंडसे हिन्दुस्थानमें ३ अरबका माल आता है)। पर इस लाभको हमें लाभ नहीं समझना चाहिये क्योंकि हिन्दुस्थानके ही कारण पर-राष्ट्रसम्बन्ध-का हमारा व्यय बहुत बढ़ गया है। इसके सिवा हिन्दुस्थानमें शासन सैन्यबलसे नहीं हो सकता। सैन्यबलसे शासन करना अपने गलेमें चक्की बांधकर तैरना है। क्योंकि ऐसा होनेसे एक सेना शासित देशमें पड़ी रहती है और आत्मरक्षाके लिये भी नहीं हटायी जा सकती। हमलोग भलीभांति जानते हैं कि इस समय एशिया और अफ्रिकामें (१) लड़ाईकी तैयारी देख बिस्मा-र्क (२) किस प्रकार प्रसन्न हो रहा है। ऐसी दशामें इङ्गलैण्ड जो एक लड़ाकू राष्ट्र नहीं है, हिन्दुस्थानको २० करोड़ जनतापर

---

(१) अफ्रिकाके युद्धसे सम्भवतः १८८१ के अङ्गरेज और बोर युद्धसे अभिप्राय है जिसमें मंजुवामें अङ्गरेज हार गये थे और ट्रांसवालने अपनी स्वतंत्रता पायी थी। एशियाके युद्धसे सम्भवतः १८७९-८० के द्वितीय अफगान युद्धसे अभिप्राय है।

(२) जर्मन प्रधान मन्त्री बिस्मार्क (१८१५—९८) बड़ा ही कूट-नीतिज्ञ था। इसे यूरोपका चाणक्य कहते हैं। छोटे छोटे जर्मन राज्योंको मिलाकर जर्मन साम्राज्य स्थापित कर इसने ही जर्मनीको शक्तिशाली बनाया।

सैन्यबलसे शासन करना चाहे तो कहना नहीं होगा कि इससे इसका नाश हो जायगा। पर भाग्यवश हिन्दुस्थानका शासन केवल ब्रिटिश सैन्यबलपर नहीं है, जैसा आगे बतलाया जायगा। हिन्दुस्थान हिन्दुस्थानी सिपाहियोंसे जीता गया है और आज भी उन्हींके बलसे कब्जेमें है। इन हिन्दुस्थानी सिपाहियोंका व्यय भी इङ्गलैण्डको नहीं देना पड़ता (इतना ही नहीं इङ्गलैण्डके लिये सैनिकोंको शिक्षित करनेका व्यय भी हिन्दुस्थान देता है। क्योंकि इङ्गलैण्डसे जो गोरे सिपाही हिन्दुस्थान आते हैं वे यहां थोड़े दिन रहकर इङ्गलैण्ड चले जाते हैं और हिन्दुस्थान उन्हें पेन्शन और भत्ता देता है) हिन्दुस्थानके कोषसे ही इनका व्यय दिया जाता है। हिन्दुस्थानमें जितनी सेना रखनी पड़ती है उसमें अङ्गरेज केवल ६५००० हैं (१)। भारतवर्षमें हमें यह कठिनाई नहीं है, पर जो कठिनाई है वह इससे कहीं अधिक है। इसके कारण हमारी परराष्ट्रनीति बड़ी जटिल हो गयी है और इसका बोझ बहुत बढ़ गया है। किसी राष्ट्रके लिये सबसे सुखकी बात यह है कि उसमें आत्मनिर्भरता हो और इस चिन्तामें न रहना पड़े कि दूसरे राष्ट्र क्या कर रहे

---

(१) १८५७ के पहले ३८००० अङ्गरेज और ३३१००० हिन्दुस्थानी सिपाही थे। गदरके बाद ६५००० अङ्गरेज और १४०००० हिन्दुस्थानी कर दिये गये। इस समय ८०००० के करीब अङ्गरेज और १९१००० हिन्दुस्थानी हैं।

हैं। अमेरिकाके प्रथम राष्ट्रपति वाशिङ्गटनने अपने देशवासियों को जो यह उपदेश दिया था कि वे इस सुखको भोगनेका तब-तक यत्न करें जबतक सम्भव हो, वह बहुत ही ठीक था। इङ्गलैण्डको यह सुख प्राप्त नहीं है। यदि हिन्दुस्थान इङ्गलैण्डके अधीन न होता तो कुछ अंशोंमें इङ्गलैण्डको यह सुख प्राप्त हो सकता था। उपनिवेशोंके आसपास जो देश हैं वे असभ्य और निर्बल होनेके कारण शान्तियुक्त हैं। यूरोपमें भी हमारे प्रति अब विशेष द्वेष नहीं है। पर मध्य पूर्व्वसे लेकर सुदूर पूर्व्व-तकके मामलोंमें हमारी चिन्ता बहुत बढ़ गयी है। रूसका आन्दोलन, मिश्रकी हलचल, ईरान और टैक्सोनिया आदिकी मामूली घटनाएं भी हमें विक्षिप्त बना देती हैं। इसका एकमात्र कारण हिन्दुस्थान ही है। इसीके कारण पूर्व्वी देशोंके मामलेमें हम अपना हाथ ऊपर रखना चाहते हैं और हमें रूसके साथ इस १९ वीं सदीमें भी वही स्पर्द्धा करनी पड़ती है जो १८वीं सदीमें फ्रांसके साथ करनी पड़ी थी।

अभीतक हमने यह बतलाया है कि हिन्दुस्थानसे हमें कोई लाभ नहीं है। इसके कारण इङ्गलैण्डकी परराष्ट्रनीति बड़ी जटिल हो गयी है, इङ्गलैण्डको चैन नहीं है। ये सब बातें सुनकर साधारण पाठक यही समझेंगे कि इङ्गलैण्डके लिये वह एक अशुभ घड़ी थी जब एक तिजारती कम्पनीने हिन्दुस्थानमें राज स्थापित करना आरम्भ किया। वे उन ब्रिटिश राजनीति-ज्ञोंकी बात पसन्द करेंगे जो कहते हैं, हिन्दुस्थानमें हमारा यह

साम्राज्य अस्थायी और क्षणिक है तथा अब वह समय दूर नहीं है जब हिन्दुस्थान छोड़कर हमें हट जाना पड़ेगा।

हिन्दुस्थानी साम्राज्यके अन्तका अनुमान वैसा ही अगम्य है जैसा इसके प्रारंभका अनुमान था। इसलिये बुद्धिमानसे बुद्धिमान मनुष्य भी इसके सम्बन्धका बिचार करनेमें भूल कर सकते हैं। ऐसी कोई घटना संसारके इतिहासमें नहीं हुई है इसलिये इस अनुमानका कोई पूर्व्वाधार नहीं है। हिन्दुस्थानमें अङ्गरेजी साम्राज्यका स्थायी रहना अगर इसलिये असंभव कहा जाय कि इङ्गलैण्डसे हिन्दुस्थान बहुत दूर है तो यह भूल है। एक समय ऐसा भी था जब इङ्गलैण्डके लिये हिन्दुस्थानमें साम्राज्य स्थापित करना असंभव था। पर जब यह असम्भव संभव हो गया तो लोगोंको मानना ही पड़ा। अगर हम यह जान सकते हैं कि इस साम्राज्यका अन्त होगा तो हमें यह भी बतला देना होगा कि इसके प्रत्यक्ष लक्षण भी दिखाई देते हैं। बतलानेके लिये तो कितनी कठिनाइयां गिना दी जा सकती हैं पर उनमेंसे कोई ऐसी नहीं है जिसे हम अपने पतनका प्रत्यक्ष लक्षण मानें। बहुत लोगोंका यह भी बिचार है कि हिन्दुस्थानके लिये हमें व्यय तो बहुत करना पड़ता है, पर लाभ होता है थोड़ा। किन्तु इस बिचारका कोई व्यावहारिक महत्व नहीं है, क्योंकि त्याग करनेकी बात सोचने और वास्तविक त्याग करनेमें बड़ा ही अन्तर है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि जैसे चीनमें हम व्यापारके उद्देशसे हैं वैसे ही हिन्दुस्थानमें भी केवल व्यापारके

लिये ही रहते तो इङ्गलैंएडकी आर्थिक अवस्था बड़ी अच्छी रहती। पर ऐसे विचारोंसे कुछ आता जाता नहीं। जिन लोगोंका यह विश्वास है कि एक न एक दिन हमें हिन्दुस्थान छोड़ना पड़ेगा वे भी नहीं बतला सकते कि ऐसा क्यों करना होगा। संसारमें बहुतसी ऐसी बाते हैं जिनका न होना ही अच्छा था, पर जब वे एक बार हो जाती हैं, तो फिर उन्हें दूर करना कठिन ही नहीं असंभव हो जाता है । हो सकता है कि वह समय आ भी जाय जब हमें हिन्दुस्थान छोड़ना पड़े । पर इस समय तो हिन्दुस्थानका शासन यही समझकर करना चाहिये कि हमें बराबर वहां रहना है। लोग कहेंगे ऐसा क्यों समझें ? इसका उत्तर यही है कि संसारमें स्वार्थ ही सर्व्व प्रधान नहीं हैं और सब काम अपनी गरजसे ही नहीं करना चाहिये। हिन्दुस्थानको कुछ लोग इस दृष्टिसे अपने अधीन रखना चाहते हैं कि वे समझते हैं कि जिसे हमारे पूर्व्वजोंने अपना रक्तपात कर प्राप्त किया है उसकी रक्षा करनी आत्मसम्मानकी दृष्टिसे हमारा कर्त्तव्य है । वे समझते हैं हिन्दुस्थान ब्रिटिश युद्ध कौशलका महत्वपूर्ण स्मारक है । इस प्रकार झूठे आत्म सम्मानका विचार भयंकर और निकृष्ट है। इस विषयमें हमें केवल इङ्गलैंएड और हिन्दुस्थानके कल्याणका ध्यान रख विचार करना चाहिये। इसमें भी इङ्गलैंएडके पहले हिन्दुस्थानके स्वार्थका ध्यान रखना होगा क्योंकि हिन्दुस्थान इङ्गलैंएडसे बहुत बड़ा और साथ ही गरीब देश है और जब हिन्दुस्थानके स्वार्थका हम विचार करते हैं तो

जिस कामको हमने हाथमें लिया है उसे पूरा किये विना हिन्दुस्थान छोड़ना इसके हितकी दृष्टिसे ही असंभव जान पड़ता है। केवल इङ्गलैण्डके स्वार्थका ही हमें ध्यान हो तव तो ऐसा करना असंभव नहीं है । यद्यपि इङ्गलैण्डका अमित धन हिन्दुस्थानके व्यापारमें लगा है और आर्थिक स्वार्थकी दृष्टिसे इसका त्याग करना कठिन है, पर तो भी बलवती इच्छा होनेसे ही यह संभव हो सकता है । पर हिन्दुस्थानकी दृष्टिसे तो यह सर्व्वथा असंभव है । जिस प्रकार अङ्गरेज हिन्दुस्थानमें शासन करते हैं उसके विरुद्ध वहुत कुछ कहा जा सकता है। इसमें भी संदेह है कि हिन्दुस्थानी जनता इस शासनको पसन्द करती है, शासन व्ययभी वहुत है। पर मेरे बिचारसे यह तो माननाही पड़ेगा कि मुसलमान शासकोंकी अपेक्षा हमारा शासन उत्तम है (१)। यदि हमें हिन्दुस्थान छोड़ भी देना पड़े तो मुझे बिश्वास है कि हमने हिन्दुस्थानको जिस अवस्थामें पाया था उससे दूनी अच्छी अवस्थामें छोड़कर जायंगे। और उस समयकी आधी वुराइयां दूर हो गयी रहेंगी।

किसी भी सरकारके न होनेकी अपेक्षा एक साधारण श्रेणी की सरकार अच्छी है । अत्याचारीसे अत्याचारी सरकारका

---

(१) किसी सरकारका अच्छा या वुरा होना उस शासनमें प्रजाकी सुख-समृद्धिसे जाना जाता है । इसे कसौटीसे अङ्गरेजी राजसे मुसलमानी राज अच्छा था, यह ऐतिहासिक रूपमें प्रमाणित किया जा सकता है।

भी एकाएक उठ जाना देशके लिये अत्यन्त हानिकारक और भयावह है। कुछ ऐसे देश हैं जो इस परीक्षामें खरे उतर जायंगे और वहां अराजकता नहीं फैलेगी। पर ऐसे देश वेही हो सकते हैं जहांकी जनताको अपने विचारसे काम करनेका अभ्यास है और बहुत शीघ्र आवश्यकतानुसार सरकार बना लेनेकी क्षमता है। पर हिन्दुस्थानमें अङ्गरेजोंके आनेके समय जैसी अराजकता फैली थी उसे देख यह कोई नहीं कह सकता कि हिन्दुस्थानमें यह क्षमता है। जितने शासक उस समय थे प्रायः सभी स्वेच्छाचारी थे। शासक वे ही थे जिन्होंने अपनी वीरताके कारण कुछ सिपाहियोंको जमाकर सङ्गठन कर लिया था। ये सिपाही लुटेरे थे और लूटना ही उनका प्रधान व्यवसाय था। उस समय महाराष्ट्रकी शक्ति सर्व्वप्रधान थी। इसका प्रताप इतना बढ़ गया था कि कलकत्ता और दिल्ली इनके हाथ चले जानेका भय हो गया था। पर इतनेपर भी मरहटा सेना लूट मार करना अपना प्रधान व्यवसाय समझती थी (१)। इसी बीच

---

(१) अङ्गरेज इतिहासकारोंमें यह एक बड़ा दोष है कि अपनी प्रशंसाके लिये दूसरोंकी अयथार्थ शिकायतें किया करते हैं। ये महाराज शिवाजीको लुटेरा बतलाते हैं और कहते हैं कि मरहठोंकी दस्युवृत्ति थी। पर जस्टिस रानाडे और प्रोफेसर यदुनाथ सरकारने भी शिवाजीको एक महान और आदर्श शासक माना है जिनके यहां पार्लमेंटरी ढंगका शासन था। शिवाजी-द्वारा संगठित मरहटा जातिका उद्देश हिन्दुस्थानमें पवित्र हिन्दू राज स्थापित

हिन्दुस्थानमें नादिरशाह भी आया जो तैमूरलङ्गसे कहीं अधिक अत्याचारी था। यह कहा जा सकता है कि मुगल राज्यके पतनके कारण यह अराजकता स्वाभाविक थी। अगर बात यही हो तोभी यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि हिन्दुस्थानमें यह शक्ति नहीं है कि एक सरकारके हट जानेपर वह अपनेको संभाल सके। पर मुगल सरकारके सम्बन्धकी जो हमारी धारणा है वही गलत है। मगल साम्राज्यका गौरव अल्पकालिक था और दक्षिणात्यमें तो कभी भी इसका पाया नहीं जमा। इसलिये क्लाइव और हेस्टिंग्सको जिस अराजकताका सामना करना पड़ा था वह मुगल साम्राज्यके पतनके कारण कोई नयी अराजकता नहीं थी यद्यपि उस समय इसका स्वरुप भयंकर होगया था। भारतवर्षमें

करना था। इसके लिये लड़नेमें उन्हे आवश्यक लूट मार करनी पड़ी थी जैसी सबको करनी पड़ती है। पर मरहटासंघको दस्युसंघ कहना तो पक्ष-पातकी हद्द है।

(२) तातार तैमूरलंग हिन्दुस्थानमें सन १३९० में आया था। वह बड़ाही निर्दय था। हिन्दुस्थान पहुचनेपर रक्षा करनेका प्रबन्ध न कर सकनेके कारण एक लाख कैदियोंको उसने मरवा डाला।

(३) नादिरशाह हिंदुस्थानमें १७३८-३९ में आया। इसके सामने मुगल मुहम्मद शाहकी सेना हार गयी। दिल्लीमें पैठ इसने कई दिनोंतक कतलेआम कराया और खजाना लूट लिया। जाते समय वह शाहजहांका प्रसिद्ध तख्तेताऊस और कोहिनूर हीरा लेता गया।

महमूदके समयसेही अराजकता समय समयपर होती आयी थी। अकबर और शाहजहांके समयमें उत्तर भारतमें केवल यह दब गयी थी।

अन्य देशोंकी अपेक्षा भारतवर्षकी विशेषता यह है कि स्वयं एक स्थायी शासन स्थापित करनेकी शक्ति इसमें अत्यल्प हैं। पहले थोड़ी बहुत शक्ति थी भी वह अङ्गरेजी राजके कारण अब नष्ट होगयी है। जिन श्रेणीके लोगोंको शासनकला मालूम थी उनका हमारे आधिपत्यके कारण पतन होगया। शाही घरानेके लोग, बड़े बड़े उमरा और मुगलराज्यमें बड़े बड़े ओहदोंपर रहनेवाले घरानोंको हमारे राजसे बड़ी क्षति हुई है। इसका स्मरण कर वे शोकातुर हो जाते हैं और हमारे राज्यके अशुभ दिनकी सदा प्रतीक्षा करते रहते हैं। हम इस ह्रासको सोचें, फिर देशके बृहदाकारका ध्यान करें और सबसे बढ़कर इसपर सोचें कि हमने पाश्चात्य संस्कृति और विज्ञान घुसेड़कर उनके परंपरागत नैतिक और धार्मिक विचारोंकी जड़ किस प्रकार खोद डाली है और किस प्रकार सब प्रकारसे उन्हें अङ्गरेजोंपर निर्भर रख उनका अन्य सभी आधार नष्ट कर दिया है, तब मालूम होगा कि अङ्गरेजोंके लिये हिन्दुस्थान छोड़ना हिन्दुस्थानके लिये कितना भयावह है। सच तो यह है कि इससे भारी कोई विपत्ति हिन्दुस्थानपर डाली नहीं जा सकती।

इस प्रकार हम देख चुके कि भारतवर्षका शासन हमारे

सामने किस रूपमें उपस्थित है, यह प्रश्न क्यों कर उपस्थित हुआ। अगले परिच्छेदमें यह बतलाया जायगा कि अङ्गरेज हिन्दुस्थानके मालिक किस प्रकार बन बैठे।

दूसरा परिच्छेद

अङ्गरेजोंने हिन्दुस्थान कैसे पाया ?

अन्तिम परिच्छदमें जिस प्रश्नपर विचार किया गया है वह भी महत्वका है। पर यह प्रश्न सबसे महत्वका है कि अङ्गरेजोंने हिन्दुस्थानको कैसे पाया। उपनिवेशोंमें जो अङ्गरेज गये उनके प्रयत्नसे इङ्गलैंडके अधीन बड़े बड़े भूमिखंड आये, पर ये भूमिखंड-प्रायः जनशून्य थे। यहांभी हमें कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था, पर उसके कारण वहांके आदिम निवासी नहीं, यूरोपके अन्य राष्ट्र थे। इन कठिनाइयोंको हमने किस प्रकार दूर किया इसे यहां बतलानेको आवश्यकता नहीं है। इतना जान लेनाही काफी होगा कि ये उपाय साधारण और बोधगम्य हैं। पर हिदुस्थानको हमने कैसे जीता इस प्रश्नका उत्तर देना बड़ाही कठिन है। हिदुस्थान जनशून्य देश नहीं था। यहांको जन संख्या बहुत अधिक है। हिन्दुस्थान असभ्य देश भी नहीं था। इसको अपनी सभ्यता है जो इङ्गलैंडकी सभ्यतासे भी पुरानी है। यूरोपके इतिहाससे यही पता लगता है कि जिस देशकी भाषा और सभ्यता बिजेतासे भिन्न हो उस देशपर पूर्णरूपसे विजय प्राप्त करनी

असंभव है। स्पेन १६ वीं शताब्दीमें यूरोपका सर्व्वशक्तिशाली राष्ट्र था, पर अपनी सारी शक्ति लगाकर भी ८० वर्षों के प्रयत्नके बाद छोटे से डच प्रान्तको भी अपने अधिकारमें न ला सका (१)। हालमें छोटासा यूनान देश नहीं जीता जासका (२)। हिन्दुस्थानमें यह विभिन्नता थी। इसपर भी इङ्गलैंड जिस समय हिन्दुस्थानको जीतनेमें लगा था उस समय उसकी शक्ति बट गयी थी। उसी समय हम अमेरिकाके तीस लाख अङ्गरेज औपनिवेशिकोंसे जिन्होंने मातृभूमिसे सम्बन्ध त्याग कर दिया था, लड़नेमें लगे थे और यहां हमारी हार हुई (३)। पर हिन्दुस्थानमें हम विजयी रहे। सोचनेपर ये दोनों बातें बड़ी विरुद्ध जान पड़ती है। अमेरिकामें अङ्गरेजोंने जो शिथिलता और सैनिक अयोग्यता दिखलायी उससे यह प्रत्यक्ष जान पड़ने लगा कि इङ्गलैंडके शुभ दिन गये और अब उसके पतनका समय आया। पर उसी समय हिन्दुस्थानमें इन्हें जो सफलता प्राप्त हुई उसे देख लोग यही समझते थे कि यह वीरोंकी जाति है। इन दो विपरीत बातों-का समाधान किस प्रकार किया जा सकता है।

---

(१) स्पेनने हालेण्डपर कब्जा कर लिया, पर हालेण्ड बराबर लड़ता रहा और एकके बाद दूसरी लड़ाई होती रही। अन्तमें हालैंड स्वतंत्र होगया।

(२) १५ वीं शताब्दीसे युनान रूमके अधीन था। पर १८२१–२९ तक जो लड़ाई हुई उसमें यह स्वतंत्र होगया।

(३) अमेरिका इङ्गलैंडके अधीन था। इङ्गलैंडने अमेरिकामें एक सेना

इसका समाधान है। पर यह समाधान हम तबतक नहीं कर सकते जबतक हम स्थूल दृष्टिसे इतिहास पढ़ते हैं और परस्पर विरोधी बातोंके समाधानके लिये सुक्ष्म तत्वोंका अन्वेषण करना नहीं जानते। साधारणतः हिन्दुस्थानकी सफलताका समाधान यह कह कर किया जाता है कि हममें कुछ जीवनशक्ति बाकी थी। इसमें सत्यका अंश भी है। पलासी जैसे अनेक युद्धोंमें हमारी सेना विरोधियोंकी बड़ी बड़ी सेनापर

रखनी चाही। इसके लिये अमेरिकापर स्टैम्प टैक्स लगाया गया। इस कारण अमेरिकाने विद्रोह किया। अङ्गरेजी फौज अमेरिकनोंको दबानेके लिये भेजी गयी। इस प्रकार १७५५ में अमेरिका और इङ्गलैंडकी लड़ाई आरंभ हुई। अमेरिकनोंके पास कोई संगठित सेना नहीं थी। पर वाशिंगटनने साधारण लोगोंको ड्रिल आदि सिखा सेना बना ली। दूसरे वर्ष तेरह प्रांतके लोगोंने मिलकर स्वतंत्रताकी घोषणा की और कहा इङ्गलैंडसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। उसके बाद जितनी लड़ाइयां हुई, अङ्गरेज सबमें हारे। अङ्गरेजोंने उत्तर और दक्षिण प्रांतोंको अलग कर देनेका षड्यंत्र रचा, पर यह मालूम हो गया। १७७७ में सारटोगाके दलदलमें अङ्गरेज सेनापति सरजान बुरजाइनको सारी सेनाके साथ आत्मसमर्पण करना पड़ा। इसके बाद भी लड़ाई चलती रही। अन्तमें पीछे हटते हटते ब्रिटिश जेनरल कार्नवालिसने यार्क टाउनमें शरण ली। वाशिंगटनने इन्हें घेर लिया। भूख प्याससे तङ्ग हो १७८१ के अक्तूबरमें इन्होंने आत्म समर्पण किया और अमेरिका स्वन्तत्र हो गया।

विजयी हुई है (१)। इसलिये हिन्दुस्थानमें कमसे कम अपनी राष्ट्रीय उत्कृष्टताका राग तो हम अलाप सकते हैं और यह कह सकते हैं कि दूसरोंके लिये चाहे हम जैसे हों, पर कमसे कम हिन्दुस्थानियोंके लिये तो हम बड़े ही भयंकर हैं। पर क्या इतने-से ही इसका समाधान हो जाता है। अगर हम यह मान भी लें कि अङ्गरेज सैनिक इतना बहादुर था कि अकेले दस या बीस हिन्दुस्थानी सिपाहियोंसे लड़ सकता था तो भी क्या यह बात मानी जा सकती है कि हमने अंगरेजी सेनासे हिन्दुस्थान जीता? जिस समय हिन्दुस्थान जीता गया था उस समय इंगलैंडकी जन संख्या १ करोड़ २० लाखसे अधिक न थी। इसके सिवा हम दूसरी लड़ाइयोंमें भी बझे हुए थे। क्लाइवके समयमें यूरोपमें सात वर्षवाला युद्ध चल रहा था। इस युद्धमें जहां तहां फ्रांसीसी और अंगरेज आपसमें लड़रहे थे। जिस समय हम यूरोपमें नेपोलियन जैसे शत्रुसे लड़रहे थे उसी समय लार्ड-वेल्सलीने हिन्दुस्थानके कई राज्योंको ब्रिटिश भारतमें मिला लिया। इस समय इंगलैंडमें ऐसा बल भी नहीं था कि जब

---

(१) पलासीकी लड़ाई सन् १७५७ में बङ्गालके नवाब सुराजुदौला और अङ्गरेजी सेनापति क्लाइवके बीच हुई थी। नवाबकी हार हुई और अङ्ग-रेज जीते। नवाबकी अपेक्षा क्लाइवकी फौज थोड़ी थी पर क्लाइवकी जीत इस कारण नहीं हुई। नवाबका दीवान मिरजाफर अङ्गरेजोंसे मिल गया था और एक बड़ी फौज ले खड़ा रहा, आक्रमण किया ही नहीं।

चाहे तभी वह एक बड़े युद्धमें लग जाय। यूरोपीय युद्धमें केवल जलयुद्धमें ही हमें अपना भरोसा था, स्थल युद्ध हम कभी स्वतः न लड़ सके, कभी आस्ट्रियाका साथ पकड़ा तो कभी प्रशियाका। ऐसी अवस्थामें भी स्थलयुद्ध कर हमने हिन्दुस्थान जैसे विस्तृत जनाकीर्ण देशको जीत लिया! अगर ऐसाही है तो जानना होगा कि इङ्गलैंडसे इस कामके लिये कितने सैनिक आये होंगे और कितना धन व्यय करना पड़ा होगा। यूरोपीय युद्धके कारण हमारे ऊपर जो ऋण होगया है उसे हम अबतक चुका नहीं सके हैं। पर हिदुस्थानके कारण हमारे ऊपर कोई ऋण नहीं हुआ है।

इस प्रकार यह कहना सर्व्वथा असत्य है कि इङ्गलैंडसे ब्रिटिश सैनिकोंने हिन्दुस्थान जाकर अपने पराक्रमसे इसे जीता। १८१८ के मरहटा युद्धमें हमारी ओरसे एक लाख सेना थी। यह वह समय था जब नैपोलियनके साथ लड़नेमें हमारे बलका पूर्ण ह्रास होगया था। ऐसी अवस्थामें वाटरलूके तीन ही वर्ष बाद क्या यह संभव था कि हम हिन्दुस्थान इतनी बड़ी सेना भेज सकें जितनी बड़ी सेना स्पेनमें ड्यूक आफ वेलिंगडनके पास भी न थी? इस समय भी हिन्दुस्थानमें दो लाख स्थल सेना है। यह सुनकर लोग आश्चर्य्यसे पूछेंगे कि इतनेपर भी हम सैन्य बलसे हिन्दुस्थानपर शासन नहीं कर सकते?

वास्तविक स्थिति मालूम होनेपर यह आश्चर्य्य आपसे आप जाता रहेगा। दो लाख सिपाही हैं जरूर, पर ये अङ्गरेज

सिपाही नहीं हिन्दुस्थानी सिपाही हैं। अङ्गरेज सिपाही केवल एक तिहाई याने ६५ हजार हैं। यह अनुपात भी गदरके बाद हुआ है। जब हिन्दुस्थानी सिपाही घटाये और अङ्गरेज सिपाही बढ़ाये गये थे। गदरके समय अङ्गरेज सिपाही ४५ हजार और हिन्दुस्थानी सिपाही २ लाख ३५ हजार थे। इस प्रकार अङ्गरेज सिपाहियोंकी संख्या केवल पंचमांश थी। १८०८ में केवल २५ हजार अङ्गरेज सिपाही और १ लाख ३० हजार हिन्दुस्थानी सिपाही थे। १७७३ के रेगुलेटिङ्ग ऐक्टके समय हिन्दुस्थानका नाम पहले पहल ब्रिटिश भारत पड़ा। उस समय अङ्गरेज सिपाहियोंका अनुपात इससे भी कम था। उसके पहले अङ्गरेज सिपाहियोंकी संख्या सप्तमांश ही थी और प्रारंभमें तो अङ्गरेज सिपाही ऐसे कम थे कि अङ्गरेजी सेना पूर्ण रूपसे हिन्दुस्थानी थी। कर्नल चेसिनीने (१) ऐतिहासिक दृष्टिसे उस सेनाका वर्णन इस प्रकार किया है "कम्पनीकी पहली फौज सन् १७४८ में बनी। मद्रासके फ्रांसीसियोंका अनुकरण कर थोड़े से हिन्दुस्थानी सिपाही यहांके अङ्गरेजी कोठीकी रक्षाके लिये रखे गये। उसी समय कम्पनीके जहाजोंके जो मांझी अयोग्य समझ कर जहाजके कामसे हटादिये गये थे उन्हींको लेकर एक छोटी सी गोरी फौज भी तैयार की गयी।

---

(१) कर्नल चेसिनी (१८२६–७०) बङ्गालकी फौजमें कैपटेन थे। सैनिक दृष्टिसे इतिहास लिखनेमें ये बड़े प्रसिद्ध थे। वाटरलूकी लड़ाईके सम्बन्धमें इन्होंने जो पुस्तक लिखी है वह बड़ी प्रसिद्ध है।

आरकट (१७५१), पलासी (१७५७) और बक्सर (१७६४) आदिके युद्ध जिनसे ईस्टइण्डिया कम्पनीकी शक्ति दृढ़ताके साथ स्थापित हुई उनमें अङ्गरेजोंकी अपेक्षा हिन्दुस्थानी सिपाहियोंकी संख्या अत्यधिक थी। इसके सिवा यह भी किसी लड़ाईमें नहीं सुना गया कि हिन्दुस्थानी सिपाही अङ्गरेज सिपाहियोंसे खराब लड़े या सारी कठिनाई अङ्गरेज सिपाहियोंने ही झेली (इतनाही नहीं हिन्दुस्थानी सिपाहियोंने अङ्गरेजोंसे अधिक कठिनता सही। आरकटके किलामें घिरे रहनेपर हिन्दुस्थानी सिपाहियोंने केवल मांड़ पीकर अपना प्राण रखा और स्वेच्छासे भात अङ्गरेजोंको दे दिया)। पर अङ्गरेज़ इतिहासकारोंको अपनी प्रशंसा गानेकी बुरी लत है इसलिये जहां कहीं इन लड़ाइयोंका वर्णन है उसमें इन हिन्दुस्थानी सिपाहियोंकी योग्यताका वर्णन छोड़ दिया गया है। मेकालेने क्लाइवके ऊपर जो निबंध लिखा है उसमें सर्वत्र ऐसेही शब्दोंका प्रयोग मिलता है जैसे "अङ्गरेज जाति", "वीर समुद्री मनुष्य", "क्लाइव और उसके साथी अंगरेजोंका कोई मुकाबला न कर सका" आदि। पर जब एक वार यह वस्तुस्थिति उनके सामने रखी जाती है कि अङ्गरेज सिपाहियोंसे हिन्दुस्थानी सिपाही अत्यधिक थे और बीरता तथा रणकौशलमें भी उनसे कम नहीं थे, तो अङ्गरेजोंका यह सारा गुणगान फीका पड़ जाता है। जहां कहीं हमारी सेनाके एक अङ्गरेज सिपाहीने विपक्षीके दस सिपाहियोंका सामना किया तो हिन्दुस्थानी सिपाहियोंने भी ऐसाही किया। इसपर कहा

जा सकता है कि आखिर विपक्षी सेना भी तो हिन्दुस्थानियोंकी थी, उसने ऐसी बीरता क्यों नहीं दिखायी ? हिन्दुस्थानी सिपाही हिन्दुस्थानी या अङ्गरेजोंसे निर्बल होनेके कारण नहीं हारे। उनके हारनेका कारण यह हुआ कि उन्हें उत्तम सैनिक शिक्षा नहीं दी गयी थी और उन्हें योग्य सेनानायक नहीं मिले। भारत विजयके सम्बन्धमें मिल साहबने (१) जो कुछ लिखा है उसे पढ़नेसे मालूम होगा कि उसने अङ्गरेजोंमें कोई प्राकृत उत्कृष्टता नहीं मानी है। उसने बतलाया है कि इस बिजयके दोही प्रधान कारण हैं। पहला अङ्गरेजी युद्धकला और सेना नियमानुशासनके सामने देशी युद्धकला और नियमानुशासनकी अयोग्यता और दूसरा हिन्दुस्थानी सिपाहियोंको अङ्गरेजी युद्धकला सिखलानेकी सुगमता। पर इन दोनों बातोंका पता अङ्गरेजोंने नहीं लगाया था। इस मूलमंत्रको खोज निकालनेका श्रेय फ्रांसिसी राजनीतिज्ञ डूपलेको है जिसकी नकल अङ्गरेजोंने की।

अगर थोडी देरके लिये हम यह मानभी लें कि अङ्गरेज सिपाही हिन्दुस्थानियोंसे अच्छे लड़ाकू थे और दोनोंने मिलकर जो सफलता प्राप्त की उसका अधिकांश श्रेय अङ्गरेज सिपाहि-

---

(१, जानस्टुअर्ट मिल एक प्रसिद्ध दार्शनिक, ऐतिहासिक और अर्थशास्त्री था। उसकी पुस्तक "लिबर्टी" का हिन्दी अनुवाद सरस्वतीसम्पादक पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदीने किया है। इसके पिता जेम्स मिलने भारतवर्षका एक इतिहास लिखाथा जो सन १८१८ में प्रकाशित हुआ था।

योंको ही है; तोभी यह सिद्ध नहीं होता कि अकेले अङ्गरेजोंने हिन्दुस्थानको जीता। आखिर अङ्गरेज सिपाही पंचमांशही तो थे! बाकी तो हिन्दुस्थानी सैनिक ही थे! अङ्गरेज अपनी प्रशंसा तो करते ही हैं, साथही जो सफलता प्राप्त हुई है उसका भी ठीक वर्णन नहीं करते। इसीलिये वे कहते है हिन्दुस्थान हम विदेशियोंद्वारा जीता गया। पर बात यह नहीं है। सत्य तो यह हैं कि हिन्दुस्थानने अपने आपको हराया। यह भी कहना ठीक नहीं है कि हिन्दुस्थान विदेशियोंसे डर या दब गया। सच्ची वस्तुस्थिति यह है कि देशके भीतर फैली हुई अराजकताको दूर करनेके लिये उसने एक सरकार कबूल करली यद्यपि यह सरकार विदेशी थी।

पर इस प्रकार एक सरकारको मान लेनेके लिये पूर्ण राजनीतिक चेतनाकी आवश्यकता होती है। हिन्दुस्थानमें यह चेतना थी, यह बात संदिग्ध जान पड़ती है। हिन्दुस्थानमें कोई ऐसा चेतना नहीं थी। हिन्दुस्थान केवल एक भौगोलिक नाम था और यह अङ्गरेजोंके अधीन उसी प्रकार अनायास चला आया जिस प्रकार जर्मनी और इटलीने नेपोलियनका आधिपत्य बिना प्रयास स्वीकार कर लिया। इसका कारण यही था कि इटली और जर्मनी नामके लिये तो थे, पर इटालियन या जर्मन राष्ट्रीयताका न तो भाव था और न राजनीतिक चेतना। इसलिये नेपोलियन एक जर्मन प्रांतको दूसरेके विरुद्ध और एक शासकको दूसरे शासकके विरुद्ध लड़ा सका। आस्ट्रियाको प्रुसिया

और प्रुसियाको आस्ट्रियासे लड़ाया और जब इनसे लड़ना हुआ तो बवेरिया और वर्टमर्गको अपनी ओर मिला लिया। जिस प्रकार नेपोलियनने समझ लिया था कि मध्य यूरोपपर आधिपत्य जमानेके लिये यह भेदनीति अमोघ अस्त्र है, उसी प्रकार फ्रांसीसी डूप्ले भी ताड़ गया कि कोई भी यूरोपीय राष्ट्र जो हिन्दुस्थानमें साम्राज्य स्थापित करना चाहे उसके लिये यह सुगम मार्ग है कि पहले अपनी फैक्टरी स्थापित करे इसके बाद इस भेदनीतिसे बाजी मारले। उसने देखा हिन्दुस्थानी राजे आपसमें लड़ रहे हैं इनके कामोंमें दखल दे कोई भी विदेशी इन्हें मुट्ठीमें कर सकता है। यही सोचकर उसने काम आरम्भ किया। निजामुलमुल्कके मरनेके बाद हैदराबादके सिंहासनके उत्तराधिकारीके बारेमें यह हस्तक्षेप आरम्भ हुआ। इसीके कारण जो युद्ध आरंभ हुआ उसीमें पहले पहल यूरोपीय साम्राज्यकी नीव हिन्दुस्थानमें फ्रांसीसियों द्वारा पड़ी।

असली बात यह है कि भारतवर्षमें राष्ट्रीय एकताका भाव नहीं था और न इसके उपयुक्त राजनीतिक चेतना थी। इस प्रकार वास्तवमें कोई भारतवर्ष था ही नहीं। तब न तो कोई देशी था और न विदेशी। इसलिये विदेशियोंके प्रति विदेशी होनेके कारण कोई डाह नहीं था। यूरोपमें भी ऐसा उदाहरण मिल सकता है। हम ऊपर कह चुके हैं कि अस्सी वर्ष पहले जर्मनीमें राष्ट्रीय शिथिलता थी। पर हिन्दुस्थानकी शिथिलता उससे कहीं बढ़कर थी। जर्मनीमें जर्मन राष्ट्रीयताका भाव

नहीं था पर आस्ट्रियन राष्ट्रीयता, प्रुशियन राष्ट्रीयता, बवेरियन राष्ट्रीयता आदिका भाव था। नेपोलियनने बवेरियाको आस्ट्रियाके विरुद्ध लड़ादिया और दोनोंको प्रुशियाके विरुद्ध लड़ाया। पर वह आस्ट्रियाको आस्ट्रियाके विरुद्ध, प्रुशियाको प्रुशियाके विरुद्ध और बवेरियाको बवेरियाके विरुद्ध न लड़ा सका। नेपोलियनने सन्धिद्वारा यह ठीक करलिया कि आस्ट्रियाके विरुद्ध युद्धमें बवेरिया नेपोलियनकी सहायता करेगा। पर केवल वेतनके लोभपर नेपोलियन जर्मनीके सिपाहियोंको जर्मनीके विरुद्ध लड़ा न सका। यदि वह ऐसा कर सकता तो जर्म्मनी और हिन्दुस्थानकी अवस्था एक जैसी कही जा सकती थी। यदि इङ्गलैण्ड फ्रांसपर चढ़ाई करे और रुपयेकी लालचपर उसे इतने फ्रांसीसी सिपाही मिलजायं कि वह फ्रांसको जीतलें तो हम कह सकते हैं कि यह बात ठीक ऐसीही हुई जैसे चार हिस्सा हिन्दुस्थानी और एक हिस्सा अङ्गरेज सिपाहियोंकी सेनाद्वारा भारतका अङ्गरेजों द्वारा विजय। पर यह बात ऐसी अस्वाभाविक जान पड़ेगी कि लोग आश्चर्य्यसे बोल उठेंगे "क्या! फ्रांसीसी सिपाही फ्रांसपर आक्रमण करनेके लिये ?" पर यदि फ्रांसका पूर्व्व इतिहास भिन्न प्रकारका होता तो यह संभव था और तब हम यही सोचते कि फ्रांसमें राष्ट्रीयताके भावका उदय कभी नहीं हुआ है। फ्रांसमें भी अंतःकलह हुआ है। बारहवीं शताब्दीमें एक राजा पेरिसमें था और दूसरा रोनमें। वे आपसमें बराबर लड़ते रहे और इस प्रकार एक फ्रांसीसी दूसरेके विरुद्ध लड़ा। पर इससे

हिन्दुस्थानकी बात नहीं मिलती क्योंकि फ्रांसीसी विदेशियोंकी ओरसे फ्रांसके विरुद्ध नहीं लड़े। फ्रांसमें विदेशी शासन था ही नहीं। पर हिन्दुस्थान बहुत दिनोंसे विदेशियोंके अधीन चला आया था। अङ्गरेज विदेशी थे पर इनके पहले मुसलमान शासक भी विदेशी थे। हम जानते हैं कि विदेशी शासनसे चूर देशमें जब अशान्ति फैलती है और लड़ाइयोंसे अच्छी रकम मिलने लगती है तो भाड़के टट्टुओं जैसे किसीकी ओरसे भी लड़नेको सिपाही मिल सकते हैं।

इसलिये जब अराजकता फैलती है तो जो अधिक वेतन दे सकें उसीको ओरसे लड़नेको वे सैनिक तैयार हो जाते हैं। उनका उद्देश्य पैसा रहता है। वे इसकी परवा नहीं करते कि हम किसकी ओरसे लड़ते हैं। देशी विदेशी सब उनके लिये बराबर है।

हिन्दुस्थानकी अवस्था ऐसीही थी। अङ्गरेजोंने ही पहले पहल विदेशी आधिपत्य स्थापित नहीं किया। यह वहां पहलेसेही था। हिन्दुस्थानके संबंधकी बहुतसी बातें हमारी समझमें इसलिये नहीं आतीं कि हम यूरोपीय दृष्टिसे उनका विचार करते हैं। हम यह मान लेते हैं कि यूरोपके देशोंकी तरह प्रत्येक देशमें एकही जातिके लोग रहते हैं तथा वहां एक राष्ट्रीयता और एक भाषा अवश्य होती है, पर जानना चाहिये कि हिन्दुस्थानकी अवस्था बिलकुल विभिन्न है। वहां एक राष्ट्रीयता नहीं है, देशी विदेशीका भाव नष्ट होगया है। ग्यारहवीं शताब्दीसे मुसलमानोंका आक्रमण आरम्भ हुआ, पर इससे बहुत पहले

भी हम पाते हैं कि बराबर एक जातिका आधिपत्य दूसरी जाति पर होता आया है। प्राचीन संस्कृतभाषाभाषी आर्य्य जिन्होंने ब्राह्मणधर्म्मकी स्थापना की स्वयं बाहरसे आये आक्रमणकारी थे। उन्होंने एक राष्ट्रीयता स्थापित करनेका प्रयत्न किया था। पर पूर्णरूपसे आदिमनिवासियोंको अपनेमें मिला न सके। यूरोपकी इंडो जर्मन जाति लुप्त होगयी है साथही उसकी भाषाका भी लोप होगया है। पर हिन्दुस्थानमें प्राचीनसे प्राचीन जातियोंकी भाषाका प्रभाव अब भी विद्यमान है। यहां जो भाषाएं प्रचलित हैं वे केवल संस्कृतका ही अपभ्रंश नहीं है वल्कि अन्य प्राचीन भाषाओंका भी इनपर प्रभाव है। दक्षिणात्यमें तो एक दूसरी ही भाषा है जिसका संस्कृतसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है। धर्म्मके कारण एक राष्ट्रीयता होती है। पर ऐसा एक धर्म्म भी हिन्दुस्थानमें नहीं है। ब्राह्मणधर्म्म सर्व्वव्यापी जान पड़ता है पर इसमें भी कितने संप्रदाय हैं। इससे यह परिणाम निकलता है कि जिन आधारोंपर पाश्चात्य देशोंकी सारी राजनीतिक कार्य्य प्रणाली अवलंबित है वे आधार हिन्दुस्थानमें नहीं है। हिन्दुस्थानमें समाजकी वह साम्यस्थिति नहीं है जिसमें राष्ट्र उत्पन्न होता है। इसके प्रमाणोंके लिये बहुत दूर जानेकी आवश्यकता नहीं। इतनाही जानना पर्याप्त होगा कि मुहम्मदगोरीसे आरम्भकर मुसलमानोंके हमले लगातार इसपर होते रहे। मुगलोंके आनेके पहले भी हिन्दुस्थानमें मुसलमान रियासतें अधिक थीं। उस समय हिन्दुस्थानके अधिकांश राज्योंमें राष्ट्रीयताका बन्धन टूट

गया था। सरकारोंका आधार अब स्वत्वपर नहीं रहा था और वे जनतामें देशभक्तिका भाव उत्पन्न नहीं कर सकती थी।

हिन्दुस्थानकी ऐसीही अवस्थामें अङ्गरेजोंने हिन्दुस्थानपर विजय पायी। इसलिये यह कोई बड़ी बात नहीं हुई। इसके कारण न तो हम हिन्दुस्थानियोंको संसारमें सबसे अयोग्य और न अङ्गरेजोंको सबसे योग्य जाति कह सकते हैं। हम देशके लिये विदेशियोंके बिरुद्ध लड़ना प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य समझते हैं। पर किसी मनुष्यका देश क्या है? जब हम इसपर बिचार करते हैं तो हमें मालूम होता है कि मनुष्यका पालन पोषण एक समाजमें होता है। इस समाजको हम एक बड़ा परिवार कह सकते हैं। यह परिवार जिस भूमिमें रहता है उसपर माताकी ममता होना स्वाभाविक है। पर देशमें जब दो तीन धर्म्म और संप्रदायके लोग बस जाते हैं और एक दूसरेको घृणा-की दृष्टिसे देखते हैं तब वह राष्ट्र परिवार नहीं रहता। लोग सारे देशको जन्मभूमि न समझ अपने जन्मग्रामको ही मातृभूमि समझने लगते हैं। ऐसी अवस्थामें उन्हें देशभक्ति नहीं ग्राम-भक्ति होती है। इसके सिवा जब पहले पहल देश विदेशियोंके हाथ जाता है तो कुछ राष्ट्रीय भावना उत्तेजित होती है। पर जब एक विदेशीके हाथसे दूसरे विदेशीके हाथ जाता है तो कोई ऐसी भावना नहीं होती।

इसलिये अङ्गरेजोंने हिन्दुस्थानको जीता इसमें कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है। आश्चर्य्य तो यह है कि इसके लिये इङ्ग-

लैंएडको कोई कठिनाई नहीं उठानी पड़ी। हिन्दुस्थान जैसे महान देशको जीत लिया, पर इसके कारण न तो इङ्गलैंएडकी प्रजाका कर बढ़ा और न इङ्गलैंएडको ऋण लेना पड़ा। इङ्गलैं-एडमें न तो अनिवार्य्य सैनिक बननेका कानून पास हुआ और न यहांसे अधिक सैनिक ही भेजे गये। इतनाही नहीं हिन्दु-स्थानमें लड़ाई लड़नेके लिये हमें दूसरे देशोंकी लड़ाईभी नहीं रोकनी पड़ी। युद्धव्ययका साधारण नियम यह है कि किसी देशके जीतनेमें जो व्यय लगता है वह उसीसे वसूल कर लिया जाता है। इसी नियमसे नेपोलियनको आर्थिक कठिनाई कभी नहीं हुई। जिस देशको जीता वहींसे वह व्यय वसूल करलिया। हिन्दुस्थानमें भी अङ्गरेजोंने ऐसाही किया। लोग कहेंगे खर्चा तो, ऐसे चला। सेना कहांसे आयी, इसका उत्तर पहलेही दे चुके हैं, हिन्दुस्थानसे ही।

ईस्टइण्डिया कम्पनीने हिन्दुस्थानपर जिस प्रकार अधिकार जमाया उसे तो विजय कहनाही नहीं चाहिये। जब एक राष्ट्रकी सेना दूसरे राष्ट्रपर चढ़ाई करती है तभी विजय संभव है। यदि उस देशको हरा न सके तो कमसे कम उसे सन्धि करनेके लिये लाचार तो करनाही होगा। इसके बिना कोई देश विजित नहीं कहा जा सकता। अब हमें यह सोचना होगा कि इन दोनों-मेंसे एक बात भी हिन्दुस्थानमें हुई या नहीं। जब सिकंदरने ईरानपर विजय पायी तो ईरान और मकदुनियामें लड़ाई हुई थी। उसी प्रकार जूलियस सीजरने जब फ्रांसपर विजय

पायी तो रोमन सेना उसके साथ थी और वह स्वयं रोमका प्रतिनिधि था। पर हिन्दुस्थानमें ऐसी घटना नहीं हुई। इङ्गलैण्डके किसी राजाने मुगल सम्राट, किसी नवाब या राजाके विरुद्ध युद्ध घोषणा नहीं की। प्रारम्भसे लेकर अन्ततक हिन्दुस्थानमें ब्रिटिश सरकारने प्रत्यक्ष रूपसे कोई लड़ाई नहीं की। हिन्दुस्थानमें फ्रान्सिसी और अङ्गरेजोंसे लड़ाई हुई। इसके कारण इङ्गलैंण्ड और फ्रान्स भी लड़े। पर इङ्गलैण्ड और हिन्दुस्थानके बीच लड़ाई कभी नहीं हुई। हिन्दुस्थानसे अङ्गरेजोंके सम्बन्धका रहस्य यह है कि इङ्गलैण्डसे कुछ सौदागर हिन्दुस्थानके समुद्रतटके नगरोंमें व्यापार करनेके लिये आये। इसी बीच मुगलसाम्राज्यका पतन हुआ। देशमें अराजकता छा गयी। अपनी व्यापारिक कोठियोंकी रक्षाके लिये उन्होंने कुछ सेना रखी। इसी सेनाके बल पर पहले उन्हें कुछ भूमि

---

(१) यूनानका प्रसिद्ध जगद्विजयी सम्राट सिकन्दर जो यूनानसे आरम्भ कर देशोंको जीतते हुए ईसासे ३२७ वर्ष पहले हिन्दुस्थान भी आया था। सिकन्दरकी वीर सेनाकी गति कोई अवरुद्ध नहीं कर सका था। पहले पहल वीर राजा पुरुने ही झेलम नदी पर उसकी गति रोक दी। हिन्दुस्थानके ही मुलतान दुर्गमें सिकन्दरको गहरी चोट आयी थी जिसके कारण मकदुनिया पहुंचने पर उसकी मृत्यु हो गयी।

(२) प्रसिद्ध रोमन सेनापति और शास्ता जुलियस सीजर इसने ब्रिटनको भी जीता था।

मिली। इसके बाद देशकी परिस्थिति और ईश्वरकी कृपाके कारण ये सारे देशके मालिक बन बैठे। ये सौदागर अङ्गरेज थे इसलिये इनकी सेनामें थोड़े अङ्गरेज सिपाही भी थे।

अतः हिन्दुस्थानकी इस हारको विदेशी विजय न कह अन्तः क्रान्ति कहना ही ठीक होगा। किसी भी देशमें जब सुसङ्गठित सरकार नष्ट हो जाती है और अराजकता फैल जाती है तो जो सैनिक शक्तियां देशमें रह जाती हैं वे आपसमें लड़ने लगती हैं और इनमें सबसे जो बलिष्ठ होती है उसीकी सरकार बन जाती है। १७९२ में फ्रान्सके बरबनवंशका जब पतन हुआ तो एक सरकार बनी थी पर यह ठहर न सकी और बोनापार्टने राज्य स्थापित कर लिया।

इसी प्रकार—१७०७ में औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद ही मुगल साम्राज्यका पतन आरम्भ हो गया था और सन १७५० में यह साम्राज्य नष्ट हो गया। नामके लिये मुगल बादशाह थे पर शाहीशक्ति कुछ भी न थी। इसलिये स्वाभाविक अराजकता आरम्भ हुई। छोटी छोटी शक्तियां सर्व्वमान्य बननेके लिये आपसमें लड़ने लगी। इन सरदारोंकी जो सेना थी वह देश प्रेमके भावसे प्रेरित हो नहीं लड़ रही थी बल्कि रुपयेके लिये लड़ती थी। उनमेंसे कुछ लोग तो ऐसे थे जो पहले मुगलोंके सूबादार थे पर अब स्वतन्त्र हो गये थे, कुछ ऐसे मनुष्य थे जो साहस कर फौज इकट्ठी कर सके थे और कुछ ऐसे भी थे जो मुगलोंके समयसे ही स्वतन्त्र शासक थे। निजाम हैदराबाद

पहली श्रेणीके, हैदर अली दूसरी श्रेणीके और पेशवाके अधीन मरहट्टे तीसरी श्रेणीके शासक कहे जा सकते हैं। ये शक्तियां सदा आपसमें लड़ा करती थीं और एक दूसरेको लूटा करती थीं। फ्रान्समें कारलिजियन वंशके नष्ट होने पर कुछ दिनोंके लिये यह अवस्था हो गयी थी पर अन्य यूरोपीय देशोंमें यह अवस्था कभी नहीं हुई। साधारण अवस्थामें किसी देशका राजा होनेके लिये कोई तभी लड़ता है जब न्यायतः राजसिंहासन पर उसका कोई अधिकार हो। पर ऐसी अराजकतामें जो फौज इकट्ठी कर सके वही लड़ सकता है। हैदर अलीके पास पहले न धन था न सेना थी और न कहींके राजसिंहासन पर उसके पूर्व्व पुरुषोंका अधिकार था। उसके पास तीक्ष्ण-बुद्धि और अपने बाहुबलको छोड़ कुछ भी न था पर इतने पर भी वह मैसूरका सुलतान बन गया। कारण यह हुआ कि लोग किसी भी सरदारके अधीन लड़नेको तैयार थे जो उन पर प्रभाव डाल सके और रुपया दिला सके। ऐसी अवस्थामें खानदानी राजे महाराजेको कोई नहीं पूछता। जिसकी लाठी उसकी भैंसकी नीतिसे काम होने लगता है और वही सब कुछ समझा जाता है जिसके पास सबसे बड़ी सेना हो। जिस समय लोग आपसमें इस प्रकार हिन्दुस्थानकी बादशाहतके लिये लड़ रहे थे, कुछ सौदागर भी इस लड़ाईमें शामिल हो गये। ये सौदागर विदेशी थे जरूर, पर यह पहले ही कहा जा चुका है कि बहुत दिनों तक विदेशी शासनमें रहनेके कारण हिन्दु–

स्थानको देशी बिदेशीका ज्ञान नहीं था। मुगल सम्राट स्वयं बिदेशी थे इसलिये इन सौदागरोंका बिदेशी होना लोगोंको नहीं खटका। इस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनीका भाग्योदय हुआ। संसारके इतिहासमें ऐसी कोई घटना नहीं हुई है इसलिये यह आश्चर्य्यजनक जान पड़ती है पर वास्तवमें वैसी है नहीं। हिन्दुस्थानमें सेनाका मिलना धन पर निर्भर था और कम्पनीके पास धन पर्य्याप्त था इसके सिवा दो तीन किले भी थे। लड़ाईमें और सरदार या राजे मारे गये और मारे जा सकते थे पर कम्पनी नहीं मर सकती थी और न इसका काम रुक सकता था। हैदर अलीके पास प्रारम्भमें धन या बल कुछ भी न था पर वह राजा हो गया यह बात किसीको आश्चर्य्यजनक नहीं जान पड़ती क्योंकि ऐसा उदाहरण इतिहासमें बहुत मिलता है। इसी तरह ईस्टइण्डिया कम्पनीका हिन्दुस्थानका राजा होनेकी उपेक्षा एक साधारण मनुष्यके पुत्र नेपोलियनका फ्रान्सका सम्राट होना कहीं अधिक आश्चर्य्यजनक है पर इसे कोई आश्चर्य्यजनक नहीं समझता। इसलिये कम्पनीके इस प्रकारके राजमें भी कोई आश्चर्य्यजनक बात नहीं है।

पर इतना कहनेके बाद भी यह बात वैसीकी वैसी है कि हिन्दुस्थानकी विजय एक देश पर दूसरे देशकी विजय नहीं है। इसमें दो राष्ट्रोंकी मुठभेड़ कभी नहीं हुई है। यह अन्तःविप्लवकारियोंमेंसे एककी शक्तिकी प्रधानता हो जानेके ही समान है। सौदागरोंका बिदेशी होना ही सारा भ्रम उत्पन्न कर देता है।

इसलिये हम यह मान लें कि जिस समय हिन्दुस्थानमें अराजकता फैली थी उस समय बम्बईके पारसी व्यापारियोंने अपने व्यापारकी रक्षाके लिये दो तीन किले बनवाये। आत्मरक्षाके लिये कुछ फौज रखी। भाग्यवश उन्हें एक चतुर सेनापति मिल गया और वे इस लड़ाईमें शामिल हो गये। यदि ऐसा हुआ होता तो उन्हें भी बक्सर और पलासीकी लड़ाईयां लड़नी पड़ती तथा वे भी मुगल सम्राटके दीवान हो जाते। इस प्रकार वे एक राजकी नीव डालते जो आगे चल कर सारे हिन्दुस्थानमें फैल जाता। उस समय सारी घटनायें उसी प्रकार होतीं जिस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनीके साथ हुई है। उस समय इसे हम अन्तःविप्लव कहते और इस प्रकारका साम्राज्य इसी अन्तःविप्लवका स्वाभाविक परिणाम समझा जाता। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके राज्यको भी ठीक इसी प्रकारका स्वाभाविक परिणाम समझना चाहिये। कम्पनीको यूरोपीय युद्ध कलासे सहायता मिली पर विजयका असली कारण वह तिलिश्मी कुञ्जी है जिसे फ्रान्सिसी डूप्लेने ढूँढ़ निकाली पर इसका प्रयोग अङ्गरेजोंने किया। डूप्लेको मालूम था कि यूरोपीय सेनाके सामने दूसरी सेना टीक नहीं सकती। पर साथ ही वह यह भी जानता था कि यदि हिन्दुस्थानी सेनाको यूरोपीय शिक्षा दी जाय तो वह यूरोपीय सेनासे भी बढ़ कर होगी। डूप्लेके इस अनुभवसे ही अङ्गरेजोंको यह विजय श्री मिली अन्यथा हिन्दुस्थान ऐसे देशको जीतनेके लिये न तो उनके पास धन था न

बल। पर कम्पनीके पास यूरोपीय युद्धकला थी जिसे वह हिन्दुस्थानी सिपाहियोंका सिखा सकी।

इसके सिवा ईस्ट इण्डिया कम्पनीको एक और बड़ा लाभ था। कम्पनी यद्यपि इङ्गलैण्डकी सरकारकी प्रतिनिधि नहीं थी पर इङ्गलैण्डसे इसका सम्बन्ध अवश्य था जिससे इसकी बड़ी सहायता हुई। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुस्थानको विजय करनेमें जो धन लगा या जो सेना इकट्ठी करनी पड़ी उसे कम्पनीने ही किहा। पर चूंकि यह कम्पनी चारटर्ड कम्पनी थी और हिन्दुस्थान तथा चीनके व्यापारमें इसका इजारा था। इसलिये ब्रिटिश पार्लमेण्टकी अनुरक्ति इसके कार्य्योंमें थी। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुस्थानमें अङ्गरेज और फ्रान्सीसियोंकी जो लड़ाइयां हुई उसे ब्रिटिश जनताने राष्ट्रीय युद्ध समझा और इसके कार्य्योंका समर्थन किया। लोग इस बातको बहुधा भूल जाते हैं कि हिन्दुस्थानमें हमें पहले पहल हिन्दुस्थानीयोंसे लड़ना नहीं पड़ा था। फ्रान्सीसियोंने मद्रास और बम्बईमें अङ्गरेज कोठियोंको नष्ट करना चाहा और आत्मरक्षाके लिये ही उनसे हमें लड़ना पड़ा। इसके बाद ७० वर्षतक फ्रान्सीसियोंसे अपनी रक्षा करनेके लिये ही हम लड़ते रहे। इसीलिये ब्रिटिश सरकारको ओरसे कम्पनीको सहायता न मिलने पर भी ये युद्ध इङ्गलैण्डकी मान रक्षाके कारण समझे गये। इसीसे बादशाही फौजें भी कम्पनीकी सहायताके लिये भेजी गयीं। १७८५ में लार्ड कार्नवालिस

गवर्नर जेनरल बना कर भेजे गये तबसे लगातार सम्राट द्वारा एक प्रसिद्ध अङ्गरेज राजनीतिज्ञ हिन्दुस्थानका गवर्नर बनाकर भेजा जाता हैं। इसके सिवा पार्लमेण्टमें कम्पनीके कार्य्योंकी जो कड़ी आलोचना हुई, लार्ड क्लाइव पर जो निन्दाका प्रस्ताव पेश हुआ, हेस्टिंग्स पर जो मामला चला, कम्पनीके कार्य्योंके नियन्त्रणके लिये जो बिल पास हुए, उन सबके कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनीके कार्य्योंको ब्रिटिश राष्ट्रने अपना कार्य्य मान लिया। इस प्रकार यद्यपि इङ्गलैण्डने हिन्दुस्थान विजयमें कम्पनीकी कोई प्रत्यक्ष सहायता नहीं की पर इङ्गलेण्ड जैसे शक्तिशाली राष्ट्रकी साहायतासे कम्पनीको बड़ा लाभ पहुंचा।

ऐतिहासिक घटनाओंके सम्बन्धमें "अद्भुत" "आश्चर्य्य-जनक" आदि शब्दोंके व्यवहारकी परिपाटीसी चल गयी है। अङ्गरेजों द्वारा भारतविजयके सम्बन्धमें इन शब्दोंका प्रयोग सबसे अधिक होता है। पर हिन्दुस्थान सम्बन्धी घटना इसी लिये आश्चर्य्यजनक है कि ऐसी कोई घटना हुई नहीं है। कम्पनीके प्रारम्भसे लेकर लगभग डेढ़ सौ वर्षोंतक जिन लोगोंने इसका कार्य्य चलाया वे यही समझते थे कि जो कुछ हुआ वह आश्चर्य्य है अब ऐसा नहीं होगा। जाब चारनाक,* मद्रासके

---

* जाब चारनाकने सुतानटी, गोबिन्दपुर और कलकत्ताको खरीदकर वर्त्तमान कलकत्ता नगरकी (१६९६) नींव डाली। ये गांव फोर्ट विलियम बनानेके लिये २००००) में खरीदे गये थे।

गवर्नर पिट,* मेजर लारेन्स ‡ आदिने सम्भवतः स्वप्नमें भी नहीं सोचा होगा कि एक दिन ऐसा भी आवेगा जब हम पेशवाओंकी भी शक्ति नष्ट कर देंगे और स्वयं महान मुगलकी जड़ उखड़ जायगी। पर यह सब हो गया, इतने पर भी मुझे इसमें आश्चर्य्यकी कोई बात जान नहीं पड़ती क्योंकि मुगलसाम्राज्यके नष्ट होने पर भारतराजश्री भूमि पर पड़ी हुई थी और इसकी प्रतीक्षा कर रही थी कोई मुझे उठावे। इसे उठानेके लिये भिन्न भिन्न साहसी पुरुष प्रयत्नमें थे और भाड़ेकी फौज जमा कर आपसमें लड़ रहे थे। इसी बीच एक व्यापारिक सङ्घने भी उधर हाथ बढ़ाया, इसके पास धन था, ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंकी बुद्धि थी, यूरोपीय युद्धकला और सङ्गठनसे यह लाभ उठा सकता था ऐसी अवस्थामें यदि सभी प्रतिद्वन्द्वियोंको परास्त कर यह फलीभूत हुआ तो इसमें आश्चर्य्यकी कौनसी बात है।

मेरे इस कथनका तात्पर्य्य यह है कि यह भ्रम दूर कर देना चाहिये कि इङ्गलएडने हिन्दुस्थानको जीता है। हिन्दुस्थान पर इस आधिपत्यका समाधान यही है कि जब मुगलसाम्राज्य नष्ट हुआ तो कुछ अङ्गरेज हिन्दुस्थानमें थे और उनका भाग्य

---

* लार्ड कैथमके पितामह।

‡ मेजर स्ट्रींजर लारेन्स सन १७४८ में इङ्गलैण्डसे आये थे। उस समय फ्रान्सिसियोंके सामने अङ्गरेजोंकी स्थिति डवाँडोल हो रही थी।

हैदरअली * और रणजीत सिंह ‡ जैसा था। फिर आगे चलकर इसी भाग्यसे वे हिन्दुस्थानके कर्ताधर्ता बन गये।

मैंने यह कहा है कि हिन्दुस्थानकी विजयमें ब्रिटिशराष्ट्रने प्रत्यक्ष कोई भाग नहीं लिया था और दो राष्ट्रोंकी लड़ाई न होनेके कारण इङ्गलैण्डको हम हिन्दुस्थानका विजेता नहीं कह सकते। तात्विक दृष्टिसे यह बात अब भी ठीक है। पर व्यवहारमें अब यह अवस्था बदल गयी है। ईस्ट इण्डिया कम्पनीका हाथ हिन्दुस्थानके मामलोंमें अब कुछ भी नहीं है। रानी विक्टोरिया अब हिन्दुस्थानकी सम्राज्ञीं है §। भारतका शासन भारतसचिवके अधीन है जो ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलका एक सदस्य है। इस प्रकार यद्यपि इङ्गलेण्डने राष्ट्रकी हैसियतसे हिन्दुस्थानको नहीं पाया था, पर अब वह उसके अधीन है। यह अवस्था ठीक वैसी ही है जैसी

---

* हैदरअली (१७०२—८२) मैसूरके यादववंशीय राजाओंके समय एक साधारण सिपाही था। पीछे अपने पराक्रमके बल मैसूरका राजा हो गया। अङ्गरेजोंसे इसकी तीन लड़ाइयां हुई थीं।

‡ पञ्जाबकेशरी रणजीत सिंह (१७८०—१८३९) इन्होंने सिक्खोंका सङ्गठन कर पञ्जाबको मुसलमानोंसे स्वतन्त्र कर लिया और अफगानिस्तानतक चढ़ गये थे।

§ अब विक्टोरिया नहीं है। उसके पौत्र जार्ज पंचम इङ्गलैण्डके राजा और भारतके सम्राट् हैं।

कोलम्वसके बाद यूरोपके बाहरके देशोंकी होती आयी है। वह अवस्था यह है कि यूरोपनिवासी चाहे जितनी दूर गये या चाहे जितना बड़ा काम किया, पर वे यूरोपीय नागरिकताको त्यागनेमें असमर्थ रहे। अमेरिकामें पहले जो सरकारें थीं उन्हें कारटेज * और पिजारोने ‡ पददलित कर दिया। जहां कहीं वे गये वहां वे सर्व्वशक्तिशाली हो गये। वे मेक्सिकोके माएटेजुमाकी शक्तिको नष्ट कर सके पर सुदूर अटलाण्टिक सागरके पार रहनेवाले चार्ल्स पाँचवेंके अधिकारका उल्लङ्घन न कर सके। इसका परिणाम यह हुआ कि जिन देशोंको उन्होंने अपने बल और पौरुषसे जीता वे देश स्पेन सरकारके अधीन हो गये। हिन्दुस्थानमें भी ऐसा ही हुआ। १७६५ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी नामके लिये मुगल सम्राटका दीवान हुई। झट ब्रिटिश पार्लमेण्टने यह दावा पेश कर दिया कि जो भूमि मिलेगी वह इसके अधीन होगी। इस वादविवादमें मुगलसम्राट्का नामतक नहीं आया और न किसीने यह जाननेकी चेष्टाकी कि वह बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाका शासन एक विदेशी राष्ट्रके अधीन देगा या नहीं। इस प्रकार कम्पनीके

---

* कारटेज स्पेनका रहनेवाला वीर जहाजी सेनानायक था। इसने १५२१ में मेक्सिकोको जीता।

‡ पिजारो भी स्पेनका रहनेवाला था। इसने दक्षिण अमेरिकाके पेरु प्रान्ता को १५३३ में जीता।

दो रूप हो गये। इङ्गलेण्डके सम्राट्के आज्ञानुसार वह एक कम्पनी थी और महान मुगलका दीवान। पर जिस प्रकार कारटेजने मांटेज़ुमाको नष्ट कर डाला। उसी प्रकार इस कम्पनीने मुगल सम्राट्का नाश कर डाला। इसके बाद यह चुपचाप ब्रिटिश सम्राट्के अधीन हो गयी और पलासीके युद्धके सौ वर्ष बाद इसने हिन्दुस्थान ब्रिटिश सरकारको सौंप दिया और आप विलीन हो गयी।

—:०:—

तीसरा परिच्छेद

ब्रिटिश शासनरहस्य

पिछले दो परिच्छेदोंमें मैंने यह दिखलानेका प्रयत्न किया है कि इङ्गलैण्ड और हिन्दुस्थानका सम्बन्ध किस प्रकार और किन कारणोंसे हुआ। मैंने साथ ही यह भ्रम भी दूर कर दिया है कि इसमें चमत्कार या असाध्य साधन कुछ नहीं है। अब मैं इसका विचार करना चाहता हूं कि हिन्दुस्थानपर अङ्गरेज किस प्रकार शासन करते हैं। हमें यह देखना होगा कि हिन्दुस्थानमें शासन करनेकी उपयुक्त शक्ति या संगठन हममें है या यह शासन भी कोई चमत्कार है। हिन्दुस्थानके सम्बन्धमें ऐसी बिचित्र घटनाओंका उल्लेख आता है कि, साधारण पाठक यह सोचने लगते हैं कि यह रहस्यमय देश है और यहां जो कुछ

है चमत्कार ही चमत्कार है। अङ्गरेज इतिहासकार पाठकोंके इस भ्रमको और बढ़ा देते हैं। वे सच्ची घटनाओं और उनके कारणोंको नहीं बतलाते बल्कि भारतीय साम्राज्यके आश्चर्य-जनक स्वरूपको ही पाठकोंके सामने रखनेका उद्योग करते हैं।

इस लिए अङ्गरेज जनतामें साधारणतः यह धारणा फैल गयी है कि हमारा भारतीय आधिपत्य साधारण नियमोंके परे है। इसका समाधान यही है कि ब्रिटिश जातिकी असाधारण बुद्धि और विलक्षणताका यह राजनीतिक चमत्कार है। जब-तक हमारी यह धारणा है, यह समझ नहीं सकेंगे कि हिन्दु-स्थानमें हमारे शासनकी अवधि कितनी है। लोग समझते हैं कि एक चमत्कारद्वारा हमें यह प्राप्त हुआ है और अन्ततक ऐसा ही रहेगा। पर ऐसे विचारवाले गहरी भूल करते हैं। संसारकी कोई वस्तु या घटना नियमसे परे नहीं है केवल इसे समझनेमें कठिनाई होती है। मैंने भारतीय साम्राज्यके स्वरूप और भारत-विजयके कारणोंपर शान्त भावसे विचार किया है और यह दिखला दिया है कि ऐसी कोई घटना अब-तक नहीं हुई थी, इसी लिये यह आश्चर्य्यजनक है। इस लिये नहीं कि इसका कारण बतलाया ही नहीं जा सकता। अब मैं इसपर विचार करूंगा कि हमारा भारतीय शासन साधारण नियमोंके अनुकूल है या इससे विपरीत आश्चर्य्यपूर्ण घटना।

यदि अङ्गरेज़ोंको हम विजेता और हिन्दुस्थानको विजित मान लें, तब तो यह शासन अवश्य ही आश्चर्य्यजनक जान पड़ेगा। एक विजित जातिके असंतोषको दूर करनेमें जो कठिनाई होती है उसका ज्ञान किसको नहीं है ? इतिहासमें ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं जहां शक्तिशाली सेना होनेपर भी विजेताको विजित देशका असंतोष दूर करना असम्भव हो गया है। और वे विफल रहे हैं। स्पेनकी हार जिस समय इङ्गलैण्डमें हुई उस समय स्पेन इसाई संसारमें सबसे शक्तिशाली राष्ट्र था। इसकी सेना अजेय समझी जाती थी। सबल विजेता निर्बल विजितको अपने अधीन रखनेमें विफल हो जाता है इसका कारण यह है कि यद्यपि विजेताके पास सैन्यबल महान होता है पर देशभक्ति और धर्म्मरक्षाका जो उद्गार विजित राष्ट्रके हृदयमें उठता है उसके बलके सामने सैन्यबल हीन जान पड़ता है। विजित देशमें शत्रुसे केवल वहांकी सेना ही नहीं लड़ती बल्कि सारी जनता शत्रुसे जुझनेको तैयार हो जाती है। इस तत्वको ठीक समझानेके लिये हिन्दुस्थान और इटलीकी अवस्थाकी तुलना उचित जान पड़ती है। यूरोपके नकशेमें इटलीकी वही भौगोलिक स्थिति है जो एशियाके नकशेमें हिन्दुस्थानकी। हिन्दुस्थानकी तरह इटली भी एक प्रायद्वीप है जिसके ऊपर भागमें एक वृहत् पर्वतमाला और निचले भागमें एक महान नदी है जो पच्छिमसे पूरबको बहती है। भौगोलिक समताके साथ साथ राजनीतिक समता

भी मार्केकी है। हिन्दुस्थानकी तरह इटली भी कई शताब्दियों तक बिदेशियोंका शिकार बना रहा। अभी बहुत दिन नहीं हुए जब इटलीपर आस्ट्रियाका आधिपत्य था। इटलीमें सैनिक भावकी न्यूनता थी, और आस्ट्रियाकी अपेक्षा इटलीकी सेना बहुत निर्बल न थो। इसके सिवा आस्ट्रिया इटलीसे लगा हुआ देश था। पर इन सब असुविधाओं और कठिनाईयोंके रहनेपर भी इटलीने आस्ट्रियाको युद्धमें हटा कर अपनी स्वतन्त्रता पा ली। युद्धक्षेत्रमें इटलीको कई बार हारना पड़ा था पर देशके भीतर जो जबरदस्त राष्ट्रीय भाव था उसके कारण इटली सफल हुआ और विदेशियोंको हटना पड़ा, पर हिन्दुस्थान और इटलीमें विभिन्नता यह है कि आस्ट्रियाके विरुद्ध युद्ध करनेमें इटलीको जितनी असुविधाएं थीं हिन्दुस्थानको इङ्गलैण्डसे लड़नेमें उतनी ही सुविधाएं हैं। हिन्दुस्थानकी जनसंख्या इङ्गलैण्डसे अठगुनी है, हिन्दुस्थान भूतलके एक छोरपर है और इङ्गलैण्ड दूसरे छोरपर इसके सिवा इङ्गलैण्डको सैनिक राष्ट्र होनेका भी दावा नहीं है। इतना होनेपर भी हिन्दुस्थानने चुपचाप इङ्गलैण्डकी अधीनता स्वीकार कर ली है। कभी कोई बगावतकी खबरतक नहीं सुनाई देती। हिन्दुस्थानके शासनमें कठिनाई होती है पर जनताके असंतोषके कारण नहीं आर्थिक कठिनाइयोंके कारण। इटलीके असंतोषको दूर करना आस्ट्रियाके सामर्थ्यके बाहरकी बात थी पर हिन्दुस्थानमें इस असंतोषका सामना

करनेकी हमें आवश्यकता ही नहीं है। लोग पूछेंगे "क्या यह एक आश्चर्य्यकी बात नहीं है?" "क्या इससे यह मालूम नहीं होता कि हिन्दुओंकी पराधीनवृत्ति और अङ्गरेजोंकी शासन-शक्ति दोनोंकी ही सीमा नहीं हैं?

इस भ्रमपूर्ण प्रश्नके दो कारण हैं। पहला यह है कि लोग यह मान बैठते है हिन्दुस्थानमें एक राष्ट्रीयता है और दूसरा यह है कि इस राष्ट्रीयताको ही हमने जीत लिया है। यूरोपको हम कई देशोंमें विभक्त पाते हैं। प्रत्येक देशकी अलग राष्ट्रीयता है और प्रत्येक देशकी अपनी राष्ट्रभाषा है। इसीलिये हम सोचते हैं कि संसारके सभी देशोंमें अपनी अपनी राष्ट्रीयता होती है। साथ ही राष्ट्रीयता किसे कहते हैं यह भी ठीक नहीं समझते जिससे भ्रम और भी बढ़ जाता है। हमारी यह स्वाभाविक धारणा हैं कि यदि इङ्गलैंण्डपर फ्रान्सका शासन हो या इसपर इङ्गलैण्डका तो दोनोंही अवस्थामें दोनों देशके लोग बड़े दुःखी होंगे। इसी तर्कपर हम यह मान लेते हैं कि हिन्दुस्थानके लोग अङ्गरेजी शासनसे भी दुःखी होंगे और इसे एक मान-हानिको बात समझते होंगे। इस विषयमें अधिक वाद बढ़ानेकी आवश्यकता नहीं है। इतना कह देना ही पर्य्याप्त होगा कि प्रत्येक जनतामें यह भाव नहीं है कि वह अपनेको एक राष्ट्र समझे। अङ्गरेज या फ्रांसीसी जाति केवल जन समुदाय नहीं है वह एक विशेष रीति नीति और विशेष शक्तिसे बंधी है। जनसमुदायको राष्ट्रमें परिणत करनेके लिये

जिन शक्तियोंकी आवश्यकता है उनका उल्लेख कर, मैं यह दिखलानेका प्रयत्न करूंगा कि इन शक्तियोंका प्रभाव हिन्दुस्थान-पर किस प्रकार पड़ता है।

इन शक्तियोंमेंसे पहली शक्ति एक जातीयता या कमसे कम एक जातीयताके भावसे उत्पन्न होती है। और जब यह पूर्णताको पहुंचती है तो एक जातीय भाषाका आविर्भाव होता है। हम अङ्गरेज उन्हें कहते हैं जो अङ्गरेजी भाषा बोलते हैं और फ्रांसीसी वे हैं जो फ्रेंच भाषा बोलते हैं। अब यह देखना है कि हिन्दुस्थानके लोग कोई ऐसी ही एक भाषाका प्रयोग करते हैं या नहीं। यदि यह कहा जाय कि यूरोपके लोग एक भाषा बोलते हैं तो इतना आश्चर्य्यजनक नहीं होगा जितना यह कहना कि हिन्दुस्थानके लोग एक भाषा बोलते हैं। भाषा तत्वविज्ञोंने यह पता लगाया है कि हिन्दुस्थानकी भिन्न भिन्न प्रांतिक भाषाओंका प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष सम्बन्ध संस्कृतसे अवश्य है। पर भाषाकी एकताका यह पर्य्याप्त प्रमाण नहीं है। भाषाकी एकता कुछ गुप्त और सूक्ष्म सम्बन्धोंमें नहीं है बल्कि इसके प्रचलित अर्थकी स्पष्टतामें। यद्यपि इटालियन और जर्मन भाषामें दोनों इण्डोयूरोपियन भाषासे निकलती हैं पर इसका ध्यान इटालियनोंने नहीं किया। वे जर्मन भाषा नहीं समझ सकते थे इसलिये आस्ट्रियन उनके लिये विदेशी थे। जिस प्रकार यूरोपके भिन्न भिन्न भाषाओंमें तत्व मूलक कुछ सम्बन्ध है उसी प्रकार हिन्दुस्थानके भिन्न

भिन्न भाषाओंमें भी है। हिन्दी भाषा अधिकांश भागमें समझी जाती है पर बंगला, मराठी और गुजराती भाषाभाषियोंसे उनकी एक राष्ट्रीयता नहीं हो सकती। मुसलमानोंके संसर्गसे हिन्दुस्थानी भाषा बन गयी है। जो दोनोंके बीचकी समान भाषा है। पर दक्षिणात्यमें जो भाषाविभिन्नता है वह तो एक राष्ट्रीयतामें बड़ी ही बाधक है। तामिल, तेलगू, और कनारी भाषा आर्य्य-व्युत्पत्तिकी भाषा ही नहीं है।

जब हम फ्रांस, इङ्गलैण्ड या और देशोंका नाम लेते हैं तो हमारे हृदयमें एक राष्ट्रीयताका भाव आजाता है। पर हिन्दुस्थानके नामोच्चारणसे यह भाव नहीं आता। इस लिये हिन्दुस्थान फ्रांस, इङ्गलैण्ड आदि की श्रेणीका देश नहीं है। इसकी तुलना यूरोपसे करनी चाहिये जो कई राष्ट्रोंका समूह है और संयोगवश इसका यह नाम पड़ गया है। यूरोपकी तरह हिन्दुस्थान भी एक भौगोलिक नाम है, पर यह भौगोलिक नाम भी हिन्दुस्थानके लिये इतना उपयुक्त नहीं है जितना यूरोप नाम यूरोपके लिये। यूरोप नाम बहुत प्राचीन है। कमसे कम हेरोडोटसके * समयसे ही यह नाम चला आया है। पर हम

---

* हेरोडोटस, जन्मकाल ईसाके ४८४ वर्ष पूर्व और मृत्युकाल ४२५ वर्ष पूर्व। इसका जन्मस्थान एशिया माइनरका हेलिकार्नस है। पर इसकी शिक्षा यूनानमें हुई थी, इसलिये संसारके इतिहासमें यूनानी की हैसियतसे ही यह प्रसिद्ध है। यूरोपमें हेरोडोटस इतिहासका जन्मदाता माना जाता है और इसके लिखे इतिहासका अनुवाद यूरोपके प्रायः सभी भाषाओंमें हुआ है।

जिस अर्थमें "इण्डिया" (हिन्दुस्थान) शब्दका प्रयोग करते हैं वह तो बहुत पुराना नहीं है। एशिया महादेशका, हिमालय और सुलेमान पर्व्वतश्रेणोसे विभक्त जो देश है उसका एकही नाम रखना हमें स्वाभाविक जान पड़ता है। पर प्राचीनकालमें लोगोंकी यह धारणा नहीं थी। संभवतः यूनानियोंने पहले पहल इस देशका इस प्रकार नाम करण किया। यूनानियोंको इस देशका ज्ञान बहुतही अल्प था। पर वे भी "इण्डिया" का अर्थ वही नहीं समझते थे जो आजकल इण्डिया (हिन्दुस्थान) का अर्थ समझा जाता है। इण्डस (इन्दु) के तटवर्ती प्रान्तको ही वे इण्डिया कहते थे। यूनानी इतिहासकार यह कहते थे कि सिकंदरने हिन्दुस्थान जीता तो उनके हिन्दुस्थानका अर्थ पंजाब प्रांतके सिवा और कुछ भी नहीं था। आगे चल कर गङ्गाकी तराईके प्रांतोंका भी पता उन्हें लगा था पर दक्षिण भारतकी तो उन्हें कोई भी खबर नहीं थी। विदेशी होनेके कारण यूनानियोंकी बात छोड़ी भी जा सकती पर स्वयं हिन्दुस्थानके रहने वालोंने ही इस सारे भूखण्डका एक नाम नहीं रखा थो। सारे देशका एक नाम रखना स्वाभाविक भी नहीं है क्योंकि उत्तर भारत और दक्षिण भारतमें बड़ा भेद है। महान आर्य्य जाति जिसकी भाषा संस्कृत थी पञ्जाबसे लेकर गंगाकी तराइयोंमें फैली हुई थी, पर दक्षिणमें वह कभी नहीं गयी। इस लिये उत्तर भारतके ही सम्बन्धमें हिन्दुस्थान नाम उचित जान पड़ता है। दक्षिणात्यमें यद्यपि ब्राह्मणधर्म्म

फैल गया है पर आज भी वहां बसनेवाले अनार्य्य हैं और उनकी भाषा भी अनार्य्य भाषा है। मुगलसाम्राज्य भी दक्षिणात्यमें स्थापित नहीं हुआ था।

इस प्रकार हिन्दुस्थान राजनीतिक नाम नहीं हैं, बल्कि यूरोप या अफ्रिकाकी तरह एक भौगोलिक शब्द है। इस देशमें बसनेवाले लोग एक ही जातिके नहीं हैं और न उनकी भाषा एक है। ऊपर मैं इटलीकी अवस्थाकी तुलना हिन्दुस्थानसे कर चुका हूं। पर इन दोनोंमें एक बड़ी विभिन्नता यही है कि इटलीमें राष्ट्रीयता सिद्धांत स्थापित हो गया था। इटली भी हिन्दुस्थानकी तरह कई भागोंमें बटा था जरूर, पर तोभी वहां एक भाषा थी। इस लिये संगठनके अभावसे विभक्त होनेपर भी सारी इटलीकी राष्ट्रीयता एक थी। हिन्दुस्थानकी अवस्था ऐसी नहीं है। जिस प्रकार भाषाके कारण यूरोपमें ऐक्य नहीं है, उसी प्रकार हिन्दुस्थानमें भी नहीं है।

पर राष्ट्रीयता निर्माण कई तत्वोंसे होता है, जिनमें एक जातीयताका भाव भी है। इसके पूरक और भी हैं, एक जातीयताके भावके सिवा देशका सामान्य स्वार्थ और एक राजनीतिक गुट कायम करनेका भाव दूसरा आवश्यक तत्व है। हिन्दुस्थानमें यद्यपि सर्वथा इसका अभाव नहीं है पर जो कुछ है वह अत्यन्त निर्बल रुपमें है। हिन्दुस्थान एक वृहद्काय देश है इस लिये यहां यह भाव नहीं पाया जा सकता था। पर हिन्दुस्थानका प्रकृत रूपमें संसारसे अलग रहना हिन्दुस्थानके

लिये कुछ लाभ दायक हुआ है। क्योंकि इसके कारण अन्य बिभिन्नताओंके रहनेपर भी एक प्रांतका संसर्ग दूसरे प्रांतसे होनेका अवसर मिला और हिन्दुस्थानके सम्पूर्ण रूपका ज्ञान, अस्पष्ट रूपमें ही सही, लोगोंको अति प्राचीन कालमें ही हो गया। मुहम्मद गजनवीके पहलेका जो अस्पष्ट इतिहास है उसमें हम कभी एक राजा और कभी दूसरे राजाके सार्व-भौम होनेकी बात बार बार पाते हैं। इसके सिवा प्रारम्भके कुछ मुसलमान बादशाह और मुगल सम्राट भी प्रायः सार्व-भौम राजा थे। यहां तक तो ठीक है पर हमें भ्रममें पड़, यह नहीं मान लेना चाहिये कि हिन्दुस्थानमें मुगल साम्राज्यका वही स्थान था जो यूरोपमें रोमन साम्राज्यका। १५२४ में बाबरने लाहौरपर अपना आधिपत्य जमाया था। इसके पूर्व इसका अस्तित्व नहीं माना जा सकता और फिर १७०७ में ही इसका पतन प्रारम्भ हो गया। इससे मालूम होता है कि इसकी अवधि कितनी थोड़ी थी। पर बाबरके इस बिजयसे ही मुगल साम्राज्यका आरम्भ नहीं होता है। १५५६ में अकबर जब सिंहासन पर बैठा उस समय भी मुगलोंके अधीन केवल पंजाब, दिल्ली और आगरा थे। अकबरने बङ्गालको १५७६ में तथा सिन्ध और गुजरातको १५९१ और १५९४ के बीच जीता। इस हिसाबसे मुगल साम्राज्यकी अवधि और भी कम हो जाती है। पर इस समय भी सारा हिन्दुस्थान मुगलोंके अधीन नहीं था। १५९५ तक अकबरका साम्राज्य नर्वदातक था और दक्षिणा-

हथमें तो वह पांव भी नहीं डाल सका था। अपने अंतिम समयमें अकबरने दक्षिणात्यपर चढ़ाईकी और मुगल धीरे धीरे दक्षिण भारतमें प्रवेश करने लगे। पर १६८३ में औरङ्गजेबकी चढ़ाईके पहले दक्षिणापर मुगलोंने कोई उल्लेखनीय विजय नहीं पायी थी। इस समयके बादसे हम यह कह सकते हैं कि एक सरकारके अधीन सारा हिन्दुस्थान आया। पर साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि दक्षिणापर मुगलोंका अधिकार नाम मात्रके लिये ही था। महाराष्ट्र शक्तिका विकाश इसी समय हो रहा था। मुगल साम्राज्य बढ़ा तो पर इसे अपने शरीरका बोझ भारी हो गया और शीघ्र ही इसका पतन आरम्भ हो ही गया। साम्राज्यकी जड़ मजबूत नहीं थी इस लिये इस अज्ञानभरी नीति द्वारा बढ़ाये गये साम्राज्यका बोझ न सह सकी।

इन सब बातोंका विचार कर यह कहना पड़ेगा कि अङ्गरेजोंके पहले कोई शासक सारे हिन्दुस्थानको एक नहीं कर सका था। अङ्गरेजोंको भी सफलता अभी हालकी है, जब लार्ड डालहाउजीने पंजाब, अवध और नागपुरको ब्रिटिश भारतमें मिलाया था।

एक राष्ट्रीयता निर्माण करनेमें समान धर्म जैसा सहायक दूसरी वस्तु नहीं है। हिन्दुस्थानमें इसका अभाव है यह नहीं कहा जा सकता। ब्राह्मण धर्म सारे देशमें व्यापक है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि हिन्दुस्थानमें यही एक धर्म है। हिन्दुस्थानमें

५ करोड़ मुसलमान हैं, (इस समय मुसलमानोंकी संख्या ७ करोड़ हो गयो है) इतने मुसलमान तुर्क साम्राज्यमें भी नहीं हैं। मुसलमानोंके सिवा सिक्ख संप्रदाय भी है जिसका धर्म्म हिन्दू और मुसलमान धर्म्मके मेलसे बना है *। इसके सिवा हिन्दुस्थानमें इसाई और बौध भी हैं। पर अधिकांश जनताका धर्म्म ब्राह्मणधर्म्म है। इस धर्म्ममें वास्तविक बल भी है और कई बार इसने सफलता पूर्व्वक बड़े बड़े आक्रमणोंका सामना भी किया है। धर्म्मांतर करनेवाले धर्म्मोंमें बौध धर्म्म सबसे महान है। इसकी उत्पत्ति हिन्दुस्थानमें ही हुई और सुदूर देशोंमें इसका प्रचार हो गया। ईसासे दो शताब्दी पहलेसे लेकर ईसाके बाद सातवीं शताब्दीतक हिन्दुस्थानमें इसका बड़ा जोर था। पर अन्तको ब्राह्मण धर्म्मके सामने इसे हार खानी पड़ी और आज बौध धर्म्म एशियाके प्रायः सभी देशोंमें व्यापक है पर अपनी जन्मभूमिसे वह निकाल दिया गया है। इसके बाद मुसलमान धर्म्मका प्रकोप बढ़ा। इसके सामने जोरोस्ट धर्म्मका

---

* सिक्ख सम्प्रदायकी स्थापना मुसलमानी अत्याचारके समय हिन्दूधर्मकी रक्षाके लिये हुई थी। जैसा कि गुरुगोविन्द सिंहने कहा था ;

सकल जगतमें खालसा पन्थ गाजे।
बढें धर्म हिन्दू सकल भण्ड भाजे ॥

यह सिलीका भ्रम है। इस कथनसे भी स्पष्ट मालूम होता है कि सिक्खधर्म हिन्दू और मुसलमान धर्मके मेलसे नहीं बना है अतः सिक्खोंकी उत्पत्ति हिन्दूधर्मकी रक्षाके लिये ही हुई है!

पतन हो गया और पहले इसाई धर्मका भी इसके सामने पांव उखड़ गया। पर हिन्दुस्थनाके ब्राह्मणधर्मके सामने इसे नीचा देखना पड़ा। हिन्दुस्थानमें मुसलमानी शासन फैल गया, पर इस्लाम धर्म नहीं फैला।

वर्तमान समयमें राष्ट्रीय एकता निर्माणके लिये जिन साधक-तत्वोंकी आवश्यकता है उनमें धर्मतत्व प्रधान है। हिन्दुस्थानमें यह तत्व बर्तमान है। यूरोपकी तुलना जब हिन्दुस्थानसे करते हैं, तो यही समानता पायी जाती है कि जिस प्रकार ब्राह्मण धर्मके कारण हिन्दुस्थानमें एकता है उसी प्रकार इसाई धर्मके कारण यूरोपमें भी एकता है। यूरोपकी इस एकताका प्रमाण, मध्यकालमें जब विधर्मी बर्व्वर जातियोंने यूरोपपर चढ़ाई की थी, मिल चुका है और आज भी गैर इसाई आक्रमणके कारण यह एकता हो सकती है। इसी प्रकार ब्राह्मण धर्मके कारण हिन्दुस्थानमें भी यह राष्ट्रीय एकता बीज रूपमें है जिससे एक राष्ट्रीयता स्थापित होनेकी सम्भावना हो सकती है। ऐसा होना सम्भव है। पर सोचनेकी बात यह है कि यदि यह होनेको होता तो बहुत पहलेही हो गया होता। मुसलमानोंके जो लगातार आक्रमण हिन्दुस्थानपर हुए, उनके कारण इस बीजके अंकुरित और पल्लवित होनेके लिये उपयुक्त ताप और वायुमण्डल मिला था। तब क्यों ब्राह्मण धर्मने अपनी रक्षासे ही सन्तोष कर लिया और सारे हिन्दुस्थानको एक राष्ट्रीयताके सूत्रमें न बांध सका? हिन्दुस्थानमें हिन्दू शक्तियां

कई बार प्रबल हुईं। पर सारे हिन्दुस्थानको वे एक न कर सकीं। सतरहवीं शताब्दीके मध्यमें शिवाजीका प्रताप फैला और उन्होंने मरहट्टा शक्ति स्थापित की। यह सम्पूर्ण रूपसे हिन्दू राज्ञ और संगठन था पर ज्यों ज्यों इसका बल बढ़ता गया, यह ब्राह्मणोंके हाथ जाने लगा। मुगल साम्राज्यके नष्ट होनेसे इसे बड़ा अच्छा मौका मिला और सारा हिन्दुस्थान मरहट्ठा संघकी विचरणभूमि हो गया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि इस संघमें हिन्दू साम्राज्य स्थापित करनेकी बीजमूलक शक्ति है और ब्राह्मण धर्म्मसे हिन्दू जातिका कल्याण उसी प्रकार होगा जैसा अन्य जातियोंका अपने अपने धर्म्मसे हुआ है। पर ऐसा नहीं हुआ। धार्म्मिक भाव देशभक्तिमें परिणत नहीं हुआ। संभवतः इसकी व्यापकताके कारण इसके बन्धन ढीले हो गये हैं और इसकी एकता संचारक शक्ति नष्ट प्राय हो गयी है। इसी कारण मरहट्टा संघसे हिन्दुस्थानका कल्याण नहीं हो सका।

इस प्रकार हिन्दुस्थानमें एक राष्ट्रीयता निर्माण करनेके लिये बीज रूपमें साधन वर्तमान हैं, पर एक राष्ट्रीयता नहीं है। यही कारण है कि हिन्दुस्थानमें हमारा साम्राज्य है, अन्यथा अङ्गरेज जातिमें कोई असाधारण गुण या विशेषता नहीं है। जिस प्रकारका आंदोलन इटलीने आस्ट्रियाके विरुद्ध किया था उसी प्रकारका एक राष्ट्रीयताका आंदोलन यदि हिन्दुस्थानमें आरंभ हो तो हम इसे उस अंशमें भी न दबा सकेंगे जिस अंशमें

आस्ट्रियाने दबाया था जिसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि हमारा साम्राज्य नष्ट हो जायगा। क्योंकि इङ्गलैण्डके पास कौनसा साधन है जिसके बल वह सात हजार मील दूर २५ करोड़ जनताकी बगावतका सामना कर सके? लोग कहेंगे जैसे हमने पहले उन्हें जीता है फिर भी वैसे ही जीत लेंगे। पर पहले ही मैं बतला चुका हूं कि अङ्गरेजोंने हिन्दुस्थानको कभी नहीं जीता है। मैंने यह भी बतला दिया है कि जिन सेनाओंसे हिन्दुस्थान जीता गया उनके पांच हिस्सोंमें चार हिस्सा हिन्दुस्थानी सिपाही थे। और इन सिपाहियोंको हम इस लिये वेतनपर रख सके कि उस समय राष्ट्रीयताका भाव हिन्दुस्थानमें जागरित नहीं हुआ था। पर यदि हिन्दुस्थानमें राष्ट्रीयताका भाव निर्बल रूपसे भी जागरित हो उठे—उनके हृदयोंमें यह भाव न भी उठे कि हिन्दुस्थानसे अङ्गरेज निकाल दिये जायं, पर इतना हो जाय कि अङ्गरेजोंको शासन चलानेमें सहायता देना वे लज्जाकी बात समझने लगें, तो प्रायः उसी दिनसे हमारे भारतीय साम्राज्यका अस्तित्व नष्ट हो जायगा। क्योंकि जिस सेनासे हिन्दुस्थानमें ब्रिटिश राजकी रक्षा होती है उसमें दो तिहाई हिन्दुस्थानी सिपाही हैं। सोचनेकी बात है कि यदि इटलीमें आस्ट्रियाका बल इटालियन सेनापर होता तो आस्ट्रियाको निकाल बाहर करनेका काम इटलीके देश भक्तोंके लिये कितना आसान हो जाता। हम मान लेते हैं कि हिन्दुस्थानकी फौज बगावत नहीं करेगी। पर इसे बगावत

करनेकी आश्यकता ही नहीं हैं-केवल नये सिपाहियोंका सेनामें भर्ती न होना ही काफी है। यदि ऐसा हो तो उसी क्षण हमें मालूम हो जाय कि हिन्दुस्थानको कब्जेमें रखना कितना असम्भव है। हिन्दुस्थानको हम अपने अधीन इसी शर्त्तपर रख सकते हैं कि इसके लिये विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़े। हिन्दुस्थानको अपना बनाये रखनेके लिये हम लगातार सेना भेजनेमें असमर्थ हैं। बिना सोचे बिचारे हिन्दुस्थानको हम एक विजित देश समझते हैं। पर यदि हिन्दुस्थान सचमुच ही अपनेको विजित देश मानने लगे तो हमें मालूम हो जाय कि इसे अधीन रखना कैसा असंभव है।

हिन्दुस्थानके लिये हम विदेशी शासक अवश्य हैं पर हम हिन्दुस्थानके विजेता नहीं हैं और न अपने सैनिक वलपर हम इसका शासन करते हैं। यह यूरोपका कुसंस्कार जनित विचार है जिसके कारण लोग समझते हैं कि चूंकी हिन्दुस्थानकी रायसे हम शासन नहीं करते इस लिये उनकी रायके विरुद्ध हम बलसे उनपर शासन करते हैं। हिन्दुस्थानकी जनता स्वतन्त्रताप्रिय होती तो इस कथनमें कुछ तथ्य हो सकता था। पर स्वतंत्रताप्रिय होनेके लिये राजनीतिक चेतनाकी आवश्यकता होती है। जहां इस चेतनाका अभाव है वहांके लोग विदेशी सरकारको निष्क्रिय भावसे देखते हैं, जिसके कारण यह बहुत दिनोंतक चल सकती है। इतना ही नहीं कोई विशेष गुण न रहनेपर भी इसकी उन्नति होती जायगी। जो देश

वार वार विदेशियोंसे जीता जाता है वहां विदेशी सरकारको निष्क्रिय भावसे देखते रहनेका अभ्यास सा पड़ जाता है। इसी कारण हम पाते हैं कि भिन्न भिन्न देशोंमें अत्याचारी शासक वहुत कालतक शासन करते रहते हैं। यदि जनता वगावत करती तो उसे दमन करनेकी शक्ति इनमें नहीं थी। पर परम्परा गत विचार शिथिलताके कारण कष्ट भोगते रहनेपर भी जनताके ध्यानमें यह बात नहीं आयी कि वह बगावत करे। १६ वीं शताब्दीमें रूसके जारोंका इतिहास पढ़ कर देखलें। इतनी बड़ी जनताने भयानक इवानके ‡ अत्याचारोंको क्यों सह लिया? इसका उत्तर प्रत्यक्ष है। पिछली दो शताब्दियोंसे तातारोंका अत्याचार वे सहते आये थे इस लिये चुपचाप अत्याचार सहनेके वे अभ्यासी हो गये थे।

क्या हम यह नहीं पाते कि हिन्दुस्थानकी जनताकी भावना भी ऐसी ही हो गयी है? हिन्दुस्थानके सम्पूर्ण इतिहासमें स्वतंत्रता, सार्व्वजनिक संस्थाओं आदिकी बात हम कहीं नहीं पाते हैं। इटालियनोंको रोमन प्रजातंत्रकी स्मृति

---

‡ इवान चौथा "टेरिबुलके" नामसे प्रसिद्ध था। इसका जन्मकाल १५३० और मृत्युकाल १५८४ ई० है। १५४७ में इसने पहले पहल जारकी उपाधि ग्रहण की। यह बड़ाही निर्दयी था। १५४७ की जनवरीमें पांच सप्ताहतक इसने रूसी प्रजाको लूटा और कतलेआम कराया।

और लाइवीके § ग्रन्थोंको सुना सुनाकर उन्हें बगावतके लिये उत्तेजित किया जा सका। हिन्दुस्थानके इतिहासमें * ऐसी कोई बात नहीं है जिसके आधारपर हिन्दुस्थानी राजनीतिक नेता हिन्दू जनताको उत्तेजित कर सकें। अङ्गरेजके आनेके सात सौ वर्ष पहलेसे वे केवल स्वेच्छाचारी नहीं बल्कि विदेशी स्वेच्छाचारी शासकोंके अधीन रहते आये थे। इसलिये, यदि इस देशमें सरकारके कार्य्योंकी आलोचना करने, इसे नष्ट करनेका उपाय सोचने, इसका संगठित विरोध करनेका भाव उठता और लोग यह समझने लगते कि सरकार जनताके लिये ही है और जनतापर ही इसका बल है तो यह एक आश्चर्य्यकी बात होती। जनता लकीरकी फकीर होती है। किसी नये आंदोलनको वह शीघ्र अपना नहीं सकती। कभी कभी तो ऐसा होता है कि अपनी रायमें बहुत मौलिक कार्य्य करनेपर भी वह ठीक वही काम करती है जिसे उसके पूर्व्वजोंने किया है। कहा जाता है कि फ्रांसकी राजक्रान्ति (१)

---

§ लाइवी प्रसिद्ध रोमन इतिहासकार। जन्मकाल ईसासे ५७ वर्ष पहले और मृत्युकाल ईसासे १७ वर्ष बाद। इसनें रोम नगरके प्रारम्भकालसे आरम्भ कर ईसाके ९ वर्ष पहलेतकका रोमका इतिहास लिखा है।

* सिलीने न जाने हिन्दुस्थानके किस इतिहाको पढ़ा है। यह राय बिलकुल भ्रमपूर्ण है। विशेष जाननेके लिये भूमिका देखें।

(१) फ्रांसकी क्रांति संसारमें एक प्रसिद्ध घटना है। इस क्रांतिने

भी फ्रांसके पूर्व भागके एक ऐतिहासिक घटनाका ही अनुकरण थी। इटलीका आंदोलन तो सचमुच ही डांटेके समयके आंदोलनसे मिलता है*। इस नियमसे यह स्वाभाविक परिणाम निकलता है कि जिस किसीके हाथमें शासनशक्ति होगी हिंदुस्थानकी जनता चुपचाप उसके अधीन बनी रहेगी। चाहे यह सरकार विदेशी और अमानुषिक अत्याचार करनेवाली क्यों न हो, और ब्रिटिश सरकार तो इस प्रकार अत्याचारी है भी नहीं?

राजनीतिक इतिहासका युगपरिवर्तन कर दिया था। सोलहवें लुईके अत्याचारोंसे पीड़ित हो जनताने बगावत कर दी और १७८९ में उसे मार डाला। इसके बाद वहां प्रजातन्त्रकी स्थापना हुई। फ्रांसके इस उदाहरणने संसारमें स्वतन्त्रताकी एक नयी लहर उत्पन्न कर दी। इसीका अनुकरण कर अमेरिका इङ्गलैंडसे स्वतन्त्र हो गया। इस क्रांतिके पहले, राजाका अधिकार बड़ा श्रेष्ट समझा जाता था। अपने कार्य्योंके लिये वह प्रजाके प्रति उत्तरदायी नहीं था। पर प्रसिद्ध दार्शनिक रूसोंने यह सिद्धांत स्थापित कर दिया कि राजा प्रजाके हितके लिये ही है। खराब राजाको प्रजा दण्ड दे सकती है। क्रांतिका आधारभूत सिद्धांत यही था।

*(२) डांटे इटलीका प्रसिद्ध कवि जो यूरोपके सर्व्व महान तीन कवियोंमेंसे एक माना जाता है। इसका जन्म फ्लोरेंसमें १२६५ में हुआ था। राजनीतिक अपराधके कारण यह देशसे निकाला गया था। निर्वासन में ही इसकी मृत्यु १३२१ में हुई।

हिन्दुस्थानमें हमारा शासन दो कारणोंसे अनहोनी घटना हो सकता था। पहला यह कि हिन्दुओंको अपने देशवासियोंके शासनमें रहनेका अभ्यास होता और शासकवर्गका विरोध करना वे जानते होते। पर उनकी यह अवस्था नहीं है इसी लिये वे अन्य बड़ी बड़ी जातियोंकी तरह सरकारको नष्ट करनेकी शक्ति रहनेपर भी उसके अधीन रहनेके अभ्यासी हो गये हैं। अङ्गरेजोंके आनेके पहले हिन्दू मुगलोंके अधीन ठीक उसी प्रकार हो गये जिस प्रकार चीनी जाति इस समय तातारोंके अधीन हैं *। मुगलोंके इस उदाहरणसे ही प्रत्यक्ष हो जाता है कि हिन्दुओंपर हमारा आधिपत्य हमारी अद्भुत राजनीतिज्ञताका परिणाम नहीं है। मुगल-इतिहास पढ़नेवालेसे यह वात छिपी नहीं रह सकती कि अङ्गरेजोंकी तरह मुगलोंने भी हिन्दुस्थानपर विना किसी विशेष साधनके ही आधिपत्य कर लिया था। मुगल साम्राज्य संस्थापक ** वावरने किसी बड़े राष्ट्रके

---

* चीनमें अब तातार वंशीय राजाओंका शासन नहीं है। चीनके संसार प्रसिद्ध वीर और त्यागी देशभक्त डाक्टर संयत सेनके यत्नसे चीनमें जो क्रांति १९११ में हुई उसमें प्रजातन्त्रकी स्थापना हो गयी।

** वावर कावुलका राजा १५०४ में हुआ। १५२६ में इसने हिन्दुस्थानपर चढाई की। मेवाड़के राणा संग्रामसिंहने इसकी सहायता की। पानीपतके मैदानमें दिल्लीके वादशाह इब्राहीम लोदीसे लड़ाई हुई। इब्राहीम हार गया और इस प्रकार वावर हिन्दुस्थानका वादशाह वन गया।

शासक की हैसियतसे हिन्दुस्थानपर चढ़ाई नहीं की थी। मध्य एशियामें उसे एक छोटीसी तातारी रियासत बपौती मिली थी पर आसवेगके साथ लड़ाईमें उसे भी खो बैठा। कुछ दिन तक इधरउधर मारा फिरा पर अन्तको अफगानिस्तानमें उसने एक छोटासा राज स्थापित किया। साम्राज्य स्थापित करनेके लिये इससे अल्प साधन दूसरा नहीं हो सकता है। पर तोभी इस तातारने हिन्दुस्थानमें एक साम्राज्य स्थापित कर ही लिया जो करीब सत्तर वर्षमें आधे हिन्दुस्थानमें फैल गया और सौ वर्षमें इसका विस्तार प्रायः सारे भारतवर्षमें हो गया। मैं यह कभी नहीं कहना चाहता कि मुगल साम्राज्य अङ्गरेजोंके साम्राज्य जैसा महान और सुसंगठित था। पर इतना जरूर है कि जिस प्रकार अङ्गरेजोंका साम्राज्य अनायास हो गया उससे भी अधिक अनायास रूपमें मुगलोंका साम्राज्य हुआ था। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके पास ,कमसे कम धन और यूरोपीय युद्धज्ञान था। इसके सिवा कम्पनी होनेके कारण यह मरण-शील नहींथी। बाबर और उसके उत्तराधिकारियोंके पास कोई ऐसा साधन नहीं था। उनके साम्राज्यका कारण बतलाना कठिन है। जो कुछ हम जान सके हैं वह यही हैं कि मध्य एशिया उस समय लड़ाकू और अवारा जातियोंसे भरा हुआ था जो रुपये और लूटकी लालचसे बाबरके साथ हो गये।

दूसरे कारणसे हमारा हिन्दुस्थानी शासन तब आश्चर्य-जनक कहा जा सकता था जब २० करोड़ हिन्दुओंको एक

राष्ट्रकी तरह एक होकर सोचनेका अभ्यास होता। यदि उन्हें इसका अभ्यास नहीं है तो फिर हिन्दुस्थानमें ब्रिटिश शासन भी कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है। एक जनसमुदाय जो समान भाव या समान स्वार्थसे बंध कर एक राष्ट्र नहीं होगया है, वह सुगमतासे पराधीन बनाया जा सकता। क्योंकि ऐसे समुदायके लोग आपसमें ही लड़ाये जा सकते हैं। मैं पहले बतला ही चुका हूं कि हिन्दुओंको एक करनेवाले बन्धन किस प्रकार अपर्य्याप्त और निर्बल हैं। हिंदुओंकी इस निर्बलता और परस्पर एकताके अभावसे अङ्गरेजी राजको किस प्रकार लाभ हुआ है यह जाननेके लिये १८५७ के गदरका इतिहास पढ़ना चाहिये। मैं कह चुका हूं कि हिन्दुस्थानी सेनाका गदर वा गदरसे निर्बल बगावत भी ब्रिटिश साम्राज्यके लिये विषमय है। पर १८५७ में यह गदर हुआ भी और इसके बाद भी हमारा भारतीय साम्राज्य बना हुआ है। स्मरण रखना चाहिये कि मैंने ऐसे गदरके सम्बन्धमें यह नहीं कहा है। वह गदर एक राष्ट्रीय आंदोलनके कारण होना चाहिये जो साधारण जनतासे होता हुआ सेनातक पहुंचे। १८५७ का गदर ऐसा नहीं था। यह सेनाहीसे आरम्भ हुआ और साधारण जनता इसे निष्क्रिय भावसे देखती रही। इसके सिवा ब्रिटिश सरकारको विदेशी मानकर इसके बिरोधसे फैले असंतोषके कारण इस गदरकी उत्पति नहीं हुई थी। इसका कारण सैनिक शिकायतें थीं। अब देखना यह है कि एक बार गदर होना असंभव वह फिर द्वा किस प्रकार।

मैं समझता हूं कि इङ्गलैण्डमें लोगोंकी एक मात्र धारणा यह है कि अङ्गरेजोंकी वहादुरीसे ही यह गदर दवाया गया। इस लिये कर्नल चेसिनीने 'इण्डियन पालिटी" नामक ग्रन्थमें जो कुछ इस सम्बन्धमें लिखा है उसे यहां उद्धृत कर देना आवश्यक समझता हूं। कर्नलने लिखा है कि वंगालकी फौजमें बगावतका भाव जोरोंपर था, पर मद्रास और बम्बईमें जो सेनाएं थीं उनपर इसका प्रभाव बहुत ही थोड़ा पड़ा था। यह बगावत पूर्ण रूपसे सैनिक थी, राष्ट्रीय नहीं। इसके बाद कर्नलने यह बतलाते हुए कि किस विरोधी आंदोलनसे यह आंदोलन दवा, लिखा है "भाग्यवश बङ्गालमें जितनी सेनाएं थीं सब नियमित सैनिकोंकी नहीं थीं। गुरखोंकी चार फौजें अलग थीं और इसमें बगावतका भाव नहीं फैला। एकको छोड़कर सभी राजभक्त बनी रहीं। गुरखोंकी फौजने तो अङ्गरेजोंके प्रति ऐसी भक्ति दिखलायी कि अङ्गरेज सिपाहियोंको भी उनकी प्रशंसा करनी पड़ी। पंजावियोंकी दो सेनाएं थीं, वे भी विचलित न हुईं। पर सबसे अधिक सहायता पंजाबकी अनियमित सेनासे मिली। इसमें छः दल पैदल और पांच दल घुड़सवार फौजें थीं। इसके सिवा सिक्खोंकी चार नियमित पलटनें थीं जो बराबर पंजाबमें रहती थीं। मुट्ठीभर अङ्गरेजोंने इन्हीं फौजोंके सहारे पहलेपहल वागियोंका सामना किया। इसी बीच पंजावियोंकी सहानुभूति अङ्गरेज़ोंकी ओर हो गयी। पंजाब हालमें ही जीता गया था। पंजाबी पहलेसे ही सिपाही

थे, पर इस हारके कारण उनके जत्थे तोड़ दिये गये थे। इस लिये पंजाबमें अङ्गरेजोंकी ओरसे रहनेवाले हिन्दुस्थानी सिपाहियोंसे वे बुरा मानते थे। इसलिये जब अङ्गरेजोंने बागियोंके विरुद्ध लड़नेकी अपील की तो हिन्दुस्थानियोंको अपना पुराना वैरी समझ वे झट उनसे लड़नेको तैयार हो गये। जितने लोगोंकी जरूरत होती थीं उतने आपसे चले आते थे।

इस प्रकार यह प्रत्यक्ष है कि हिन्दुस्थानकी भिन्न भिन्न जातियोंको आपसमें लड़ाकर यह गदर दबाया गया। जबतक ऐसा होना संभव है, जबतक लोगोंमें सरकारकी आलोचना करनेका अभ्यास नहीं है और चाहे सरकार जो करे उसके विरुद्ध बगावत करना नहीं जानते, तबतक इङ्गलैण्डका शासन हिन्दुस्थानमें रहेगा। इसमें आश्चर्य्य की कोई बात नहीं है। पर यदि यह अवस्था बदल जाय और किसी कारणसे भी सारी जनता एक राष्ट्र बन जाय या इङ्गलैंड और हिन्दुस्थानका संबन्ध इटली और आस्ट्रियाके समान हो जाय तो यह सोचनेकी आवश्यकता नहीं है कि हमारा राज्य रहेगा या नहीं। उसी क्षणसे इसकी आशा छोड़ देनी चाहिये। पर मैं यह कभी नहीं मान सकता कि हिन्दुस्थानकी सारी जनता हमारे विरुद्ध एकाएक उठ खड़ी होगी। कुछ ऐसे साहित्य लिखे गये हैं जो भयका हौआ उत्पन्न करते रहते हैं। उदाहरणार्थ मि० इलियटका "कनसर्निंग जान इण्डियन अफेयर्स" है। इसमें गरीब रैयतोंके दुःखका भयानक चित्र खींचा गया है और यह परिणाम

निकाला गया है कि इस दुःखके कारण उत्पन्न हुई निराशा फूट पड़ेगी और हम निकाल बाहर किये जायंगे। वर्णित बातें ठीक हैं या नहीं इनकी जांचका अवसर यहां नहीं है। मैं तर्कके लिये मान लेता हूं कि वास्तवमें हिन्दुस्थानी रैयतोंको वैसा ही दुःख है जैसा मि० इलियटने लिखा है; पर तोभी इस कारण क्रांति होनेका उदाहरण संसारके इतिहासमें नहीं मिलता। मैं जानता हूं कि बड़ी बड़ी जातियां शताब्दियोंतक अवर्णनीय दुःखमें पड़ी रही हैं पर उन्होंने बगावत कभी नहीं की है। यदि वे जीवित नहीं रह सकतीं तो मर जाती हैं और यदि वे किसी प्रकार प्राण रख सकती हैं तो जीवित रहती हैं। उनके भाव मर जाते हैं और अभावके कारण उनकी इच्छाएं नष्ट हो जाती हैं। वही जाति बगावत करती है जो आगे बढ़नेकी आशा रखती है और अपने बलका अनुभव करने लगती है। यदि हिन्दुस्थानमें ऐसी बगावत हो भी तो जबतक हिन्दु-स्थानी सिपाहियोंने हिन्दुस्थानियोंको अपना भाई और अपने प्रभु अङ्गरेजोंको विदेशी समझना आरम्भ नहीं किया है. तबतक उन्हींके द्वारा यह दबायी जा सकती है। पर इसके विरुद्ध यदि हिन्दुस्थानमें एक राष्ट्रीयता हो जाय और सारा हिन्दुस्थान एक व्यक्तिके ऐसा काम करनेलगे तब तो हमें इस प्रकारकी बगावत होनेतककी प्रतीक्षा भी नहीं करनी होगी। ऐसी हालतमें यह बगावत देशी फौजोंमें भी फैल जायगी और हमारा बल इन्हीं सिपाहियोंपर है। १८५७ का गदर था बहुत बड़ा,

पर फिर भी हम इसमें सफल रहे। इसका कारण यही है कि फौजके कुछ भागमें ही यह फैला था, जनताकी सहानुभूति इससे नहीं थी और हमारी ओरसे लड़नेके लिये हिन्दुस्थानी मिल गये। पर जिस दम यह गदर हिन्दुस्थानी राष्ट्रके भावका द्योतक हो उसी दम हमारी सारी आशाओंका अन्त समझना चाहिये। और फिर साम्राज्यरक्षाकी इच्छा छोड़ देनी चाहिये। क्योंकि सच्ची बात यह है कि हम हिन्दुस्थानके विजेता नहीं है और विजेता बनकर हम इसपर शासन कर नहीं सकते। पर यदि हम ऐसा करना चाहें तो फिर यह पूछनेकी आवश्यकता नहीं है कि हम इसमें सफल होंगे या विफल। प्रयत्न मात्रसे ही आर्थिक कारणोंसे हमारा नाश हो जायगा।

चौथा परिच्छेद

पारस्परिक प्रभाव

—००:०:००—

पिछले दो परिच्छेदोंमें हमने यह दिखलानेका प्रयत्न किया है कि अङ्गरेजोंने यदि हिन्दुस्थानको जीता है या वे इसपर शासन कर रहे हैं तो इसमें कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है। हिन्दुस्थानमें हमारे देशवासियोंने जो कार्य्य किया है उनमेंसे कुछके लिये हमें अभिमान हो सकता है और कुछ थोड़ेसे लोगोंने शासनकी जो असामान्य योग्यता दिखालयी है उसके लिये भी अभिमान हो सकता है, पर यह मान लेना भूल होगी कि हिन्दुस्थानमें ब्रिटिश साम्राज्यका होना ही यह प्रमाणित करता है कि हिन्दुस्थानियोंसे अंगरेज जातिमें बहुत अधिक योग्यता है। इसकी आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि बिना यह श्रेष्ठता माने ही हम अन्य ऐसे कारण बतला सकते हैं जिनकी वजहसे यह साम्राज्य स्थापित करना तथा इसका चलना दोनों संभव है। इसलिये इसे आश्चर्य्य वा चमत्कार माननेकी आवश्यकता नहीं है।

फिर भी एक अर्थमें यह जितना समझा जाता है उससे कहीं अधिक आश्चर्य्यजनक है। वास्तवमें इसके कारण नहीं इसके परिणाम आश्चर्य्यजनक हैं। विशेष ऐतिहासिक दृष्टिसे यह बड़ा ही महान है और घटनाओंके महत्वके कारण इसे

ऐतिहासिक श्रेष्ठता मिलनी चाहिये। हमने कई घटनाओंको अंगरेजी इतिहासमें बड़ा महत्व दिया है। अमेरिकाकी क्रांति एक ऐसी घटना है जो अपनी रोचकताके ही कारण पढ़ी जाती है। भारतीय ,साम्राज्य-संबन्धी जानकारी बढ़ानेका यही उपाय है कि हम उसकी रोचकता और ऊपरी तड़कभड़कमें न पड़ उसकी भीतरी जांच करें। हमें यह जरूरी नहीं है कि प्रत्येक महान प्राच्य साम्राज्य महत्वका ही जान पड़े। ऐशियामें कितने ही ऐसे साम्राज्य हुए हैं जिनका ऐतिहासिक महत्व यूनान और रसकनके एक नगर-प्रजा-तंत्रके समान भी नहीं है। वे विस्तृत थे, वे अधिक दिनतक ठहरे भी, पर इतनेसे ही उनके अध्ययनमें महत्व नहीं मालूम हो सकता। उनकी जांच करनेपर मालूम होता है कि साधारणतः उनका संगठन निम्न श्रेणीका था। उनके भारसे व्यक्तिविशेष दबसे गये थे जिसके कारण उन्हें कोई आनन्द नहीं था, वे कोई उन्नति नहीं कर सके और कोई महत्वकी सफलता नहीं प्राप्त की। संभवतः हमारे भारतीय साम्राज्यके प्रति हमारी पहली धारणा यही हो सकती है कि वास्तवमें इन निरंकुश एशियाई साम्राज्योंसे यह किसी विशेष महत्वका नहीं है। इतना हमारा विश्वास अवश्य है कि ब्रिटिश जनताके नियंत्रणके कारण यह बुद्धिमता, सदाचार और मानव समाजके प्रति उदारताके भावमें मुगल सम्राटसे ऊचें दर्जेका है। फिर भी इसे हम एक दूषित राजनीतिक प्रणालीके एक अच्छे नमूनेसे अधिक नहीं समझ सकते।

महान मुगलका उत्तराधिकारी समझ अभिमान करनेकी ओर हमारी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। हमारे शासनमें बहुत गुण हैं पर इन सब गुणोंके होनेपर भी हिन्दुस्थानकी प्रजाको आनन्द है, इसमें हमें सन्देह है। हमें यह भी आशंका हो सकती है कि हमारा शासन उन्हें अधिकाधिक आनन्दके लिये तैयार कर रहा है या उन्हें दुःखके नीचातिनीच गर्त्तमें गिरा रहा है। इसके सिवा हम यह भी सोचते हैं कि सहानुभूतिरहित विदेशी अङ्गरेजी शासनसे एशियाई शासन और उसपर भी हिन्दूजनता द्वारा स्थापित राष्ट्रीय शासन, कम सभ्य होनेपर भी स्वाभाविक होनेके कारण, क्या अधिक लाभदायक नहीं होगा?

पर हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि प्रत्येक साम्राज्य इस प्रकारके महत्वका नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ रोमन साम्राज्य ऐसा नहीं था। एक समय था जब निरंकुश और अर्द्ध सभ्य होनेके कारण रोमन साम्राज्य भी ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्वका नहीं समझा जाता था। पर इतिहास अध्ययन करनेकी वह दृष्टि बदल गयी है। एक पीढ़ी पहले यह राय ही प्रधान थी कि राजनीतिमें स्वतंत्रताके सिवा दूसरी कोई वस्तु अच्छी नहीं है, इसलिये इतिहासका वह भाग जिसमें स्वतन्त्रताका उल्लेख न हो, द्रष्टव्य नहीं है। इसके साथ साथ इतिहासको कविताकी तरह आनन्दकी वस्तु समझ कर पढ़नेका अभ्यास था और जहां इस प्रकारका आनन्द नहीं आता था, इतिहासके वे पृष्ठ बिना पढ़े उलट दिये जाते थे। उस समय

रोमन साम्राज्यकी भी निन्दाकी जाती थी। रोमके प्रजातंत्रका इतिहास पढ़ा जाता था और रोमन साम्राज्यका इतिहास उसी अंशमें पढ़ा जाता था जिस अंशमें उसका सम्बन्ध इस प्रजातन्त्रसे था। पर अब यह ढङ्ग बदल गया। हम इतिहास इसकी रोचकताके लिये नहीं बल्कि इससे मिलनेवाली शिक्षाके लिये पढ़ते हैं। हम यह भी समझ गये हैं कि राजनीतिमें स्वतन्त्रताके सिवा भी अच्छी चीजें हैं, उदाहरणार्थ राष्ट्रीयता और सभ्यता। यह हम बहुधा पाते हैं कि जो सरकार अधिक स्वतन्त्रता नहीं देती उसके कारण इन लक्ष्योंकी ओर बढ़नेमें बड़ी सहायता पहुंचती है। इसीलिये सारी बर्व्वरता और निरंकुशता रहनेपर भी प्रारम्भमें ही नहीं १३ वीं शताब्दीतक रोमका इतिहास एक बड़े ऐतिहासिक महत्वका समझा जाता है। क्योंकि इस साम्राज्यमें भी स्मरणीय कार्य्य हुए हैं। वर्त्तमान समयमें सभ्य राष्ट्रोंका बन्धुत्व है उसका बीज हम इसमें पाते हैं। इसीलिये यद्यपि यह एक बड़ा साम्राज्य था और यद्यपि इसका शासन निरंकुश भावसे होता था, फिर भी इसका अध्ययन लोग बड़े चावसे करते हैं।

विजय द्वारा स्थापित किये गये रोमन साम्राज्य और अन्य साम्राज्योंमें विभिन्नता विजयीके विजेतासे अधिक सभ्य होनेके कारण है। महान विजयी जाति सदा सभ्यतामें भी महान नहीं होती। विजयी वीरोंके पक्के नमूने साइरस और चंगेज खां जैसे लोग हैं जो दरिद्रताके कारण दृढ़ और

लूटकी लालचमें पड़ी जातिके सरदार थे। ऐसे आक्रमणकारीके सामने सभ्य जातिका हारना ही संभव है। सभ्य जाति कभी कभी इनसे अपनी आत्मरक्षा कर लेती है, पर कोई जौहर नहीं दिखला सकती। हां, अब वैज्ञानिक अन्वेषणोंके कारण सभ्य जातिकी शक्ति बढ़ गयी है। इतिहासमें टरकोमैन्स सबसे महान विजयी हुए हैं, पर वे सबसे अधिक असभ्य थे। मध्य एशियाकी इसी जातिसे एशियाके राजाओंको सेना मिलती थी। बाबर और अकबरने इन्हींके बल भारत विजय किया। यही साधारण नियम है, पर इसका अपवाद भी होता है और जब एक उच्च सभ्यतावाली जाति अपनेसे निम्न सभ्यतावाली जातिको जीतकर उसमें अपनी सभ्यता फैलाती है तो एक नयी स्थिति उत्पन्न हो जाती है और अध्ययनकी दृष्टिसे इसकी विशेष उपयोगिता है। सिकन्दर महानकी पूर्वी विजय ऐसी ही थी। मकदूनियाका यूनानसे निकटका सम्बन्ध था, इसलिये सिकन्दरके साथ ही साथ यूनानी सभ्यता भी पूर्वी देशोंमें फैली। इसलिये डायडोचीके राज्य यद्यपि निरंकुश और निम्न श्रेणीके थे, पर तो भी यूनानी और पूर्वीय विचारोंके संमिश्रणसे महत्वपूर्ण परिणाम हुआ। सबसे बढ़कर जो बात है वह यह है कि रोम साम्राज्यका प्रभाव यूरोपके राष्ट्रोंपर जो पड़ा, उससे इसका प्रभाव कहीं अधिक स्थायी रहा।

यदि हम अङ्गरेजोंद्वारा भारत विजयकी तुलना महान तुर्क और महान मुगलकी विजयसे न कर यूनानद्वारा प्राच्य

देशोंकी विजय और रोमद्वारा फ्रांस और स्पेनकी विजयसे करें तो बड़ा अन्तर हो जायगा। यदि मुगल और तुर्कोंकी विजयसे इसकी तुलना करनी पड़े तो हमें इसके आकार और तड़क-भड़कके धोखेमें न पड़कर इसे एक साधारण दृष्टिसे देखना पड़ेगा और इसे हम सभ्यताके इतिहासके उपयुक्त नहीं बल्कि बर्बरताके इतिहासके ही उपयुक्त समझेंगे। पर यदि इसकी तुलना हम रोमन और यूनानी विजयसे करें तो हमें इसकी गणना संसारकी उन घटनाओंमें करनी पड़ेगी जो सभ्यताके इतिहासकी सामान्य स्थितिसे उतनी ही ऊंची हैं जितनी सामान्य पूर्वी विजय सभ्य इतिहासकी सामान्य स्थितिसे नीची है।

इसमें तो संदेह नहीं है कि साधारणतः ब्रिटिश भारतकी शासक जातिकी सभ्यता शासित जातिसे कहीं अधिक श्रेष्ठ और बलवती है। यह बात हम आत्मप्रशंसाके दोषसे वञ्चित रह कर भी कह सकते हैं। अंगरेज जातिमें यूनानी जातिकी बुद्धि और मेधा नहीं है, पर जिस सभ्यताके वे उत्तराधिकारी हैं वह सभ्यता केवल उन्हींकी नहीं है। यह सभ्यता प्राचीन जगतके भावोंसे भावित हो सम्मिलित यूरोपीय राष्ट्रोंके सम्मिलित प्रयत्नका परिणाम है, यह सारे यूरोपकी सभ्यता है। पर दूसरी ओर क्या है? हिंदुस्थानकी सभ्यताके सम्बन्धमें हमारा क्या अनुमान हो सकता है?

हम कई बार कह चुके हैं कि हिन्दुस्थान एक देश नहीं

है और न इसकी कोई एक ही सभ्यता है। इसमें इतनी भी एकता नहीं है जितनी सामान्य रीतिसे जान पड़ती है। ब्राह्मण धर्मने अपनी विशेष चतुराई और सर्व्व सम्मिश्रण नीतिसे भिन्न भिन्न विरुद्ध सभ्यताओंको एक नाम दे दिया है। यदि हम कुछ गहरी जांच करें तो मालूम होगा कि दो प्रकारकी जनता है। एक गोरी और दूसरी काली। दोनों प्रकारके लोग हर जगह पाये जाते हैं। दाक्षिणात्यमें काले रङ्गका बाहुल्य है। बङ्गालमें इसकी संख्या कम होनेपर भी यह साफ दिखलायी देता है। संभवतः गङ्गाके उद्‌गम स्थानकी ओर बढ़नेपर इस रङ्गका लोप होने लगता है। पर सारे भारतवर्षमें दोनों रङ्गके लोग मिले जुले हैं। यह इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि आजकल कोई ऐसी भाषा नहीं बोली जाती है जो केवल संस्कृतकी अपभ्रंश हो जिस प्रकार फ्रेंच और इटालियन लेटिनकी हैं। कोई भी हिंदुस्थानी भाषा पूर्ण रूपसे संस्कृतसे निकली नहीं है। जिसका शब्दकोष अधिकांश संस्कृतका है उसमें भी अनार्य्य भाषाके रूप और प्रत्यय हैं। इसलिये हिन्दुस्थानकी सभ्यताकी जांच करनेके समय हमें इस मूल जातीय भेदका ध्यान रखना होगा। काले चमड़ेवाली जाति कई प्रदेशोंमें सभ्य नहीं है और उसे असभ्य श्रेणीमें ही रखना होगा। मि० बी० एच० हागसनने लिखा है—"विस्तृत देश भारतके प्रत्येक जङ्गली और पहाड़ी प्रदेशमें ऐसे लाखों मनुष्य बसते हैं जिनकी अवस्था टैसिटसद्वारा वर्णित जर्मनोंसे बहुत अच्छी नहीं है।"

इसके सिवा हमें वास्तविक हिन्दू जाति और प्रवासी मुसलमानोंके बीचका भेद भी जानना होगा। हिन्दुस्थानमें पांच करोड़से (१) कम मुसलमान नहीं हैं इनमें अधिकांश अफगानी पठान, अरब, तुर्कोमैन, तातारी आदि हैं जो समय समयपर मुसलमान विजेताओंके साथ तथा पीछेसे भी उनकी सेनामें भर्ती होनेके लिये आये थे। यहांके मुसलमानोंको भी संसारके अन्य मुसलमानोंकी तरह हम अर्द्धसभ्य अवस्थामें पावेंगे। कुछ सद्गुण हैं, पर वे आदिम अवस्थाके उपयुक्त हैं। संक्षेपमें मुसलमानोंके विचार और उनकी धारणा ऐसी है जो आधुनिक समाजके लिये यथोचित रूपसे उपयुक्त नहीं हैं।

अन्तमें हमें हिन्दुस्थानकी वास्तविक जातिका विचार करना होगा। यह वह आर्य्य जाति है जो संस्कृत भाषा मुखरित करती हुई पञ्जाबसे प्रधानतः गङ्गा तटके प्रदेशोंमें फैली थी, पर जिसने अपनी धार्मिक प्रणाली सारे भारतवर्षमें फैला दी। संभवतः संसारकी कोई भी दूसरी जातिने इस जातिके ऐसा सभ्यताका प्रेम प्रकट नहीं किया। वैदिक साहित्यमें वर्णित इसकी असभ्यावस्था भी मनुष्योचित और ज्ञेय है। हिन्दुस्थानमें बसनेपर यह नियमित रूपसे सभ्यताकी ओर उन्नति करती गयी। इसकी रिवाजें कानून हो गयीं और स्मृतिके

---

(१) अब उनकी संख्या सात करोड़ है—उल्थाकार

रूपमें सुव्यवस्थित करदी गयीं। इसने श्रम विभाग भी कर लिया। इसने काव्य और दर्शनकी सृष्टि की और विज्ञानका बीज रोपा। इसकी गोदसे एक महान सुधारक धर्मने जन्म ग्रहण किया जिसे बौद्ध धर्म कहते हैं जो संसारका इस समय भी एक महान धर्म है। यहांतक कि इसकी समानता उन्हीं मेधावी जातियोंसे की जासकती है जिन्होंने स्वयं हमारी सभ्यताकी सृष्टि की।

पर आर्य्य जातिने यूरोपमें जितनी उन्नति की वैसी हिन्दुस्थानमें नहीं की (१)। हिन्दुस्थानके आर्य्योंने इतिहास लिखनेमें बड़ी असमर्थता दिखलायी। इसलिये इसके सम्बधका कोई उल्लेख नहीं मिलता। जहां इसका संवन्ध यूनानियों और मुसलमानोंसे हुआ है वहींका इतिहास मिलता है। इसलिये यह क्यों उन्नति न कर सकी इसके कारणोंका केवल अनुमान मात्र ही हम कर सकते हैं। पर यह बात स्पष्ट है कि कुछ शताब्दियोंके बाद धार्मिक सुधारका महान आंदोलन विफल हो गया। बौद्ध धर्म हिन्दुस्थानसे निकाल दिया गया। पुरोहितोंकी

---

(१) हिन्दू पुराणों और काव्योंकी बात छोड़ दी जाय तो भी पञ्जाब और सिन्धुमें जो खुदाईका काम हो रहा है उसके आधारपर सरकारी पुरातत्व विभागके डाइरेक्टर सर जान मार्शलने यह बात निश्चित रूपसे प्रकट करदी हैं कि आजसे ५००० वर्ष पहले वहां उसी कोटिकी सभ्यता थी जिस कोटिकी सभ्यता आज पच्छिममें है।

स्वेच्छाचारिता एक बार पुनः स्थापित हो गयी। कोई स्थिर निश्चित प्रणाली नहीं बन सकी। नागरिक सभ्यता बहुत अल्प थी। इसके बाद विदेशी आक्रमणकी महामारी आगयी।

बहुत दिनोंतक विदेशी शासनके अधीन रहना राष्ट्रीय ह्रासका एक सबसे प्रधान कारण है और प्राचीन हिन्दुओंके विषयमें हम जो कुछ थोड़ा बहुत जानते हैं उससे मालूम होता है कि इस विदेशी आक्रमणके कारण उनका किस प्रकार नैतिक ह्रास हुआ है। यूनानी लेखक एरियनने भारतीयोंके आचरणके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है उसे पढ़ कर आश्चर्य होता है। उसने लिखा है-"वे प्रशंसनीय रूपमें बहादुर हैं। एशियाकी सभी जातियोंमें वे युद्धके लिये श्रेष्ठ हैं। अपनी सादगी और सचाईके लिये वे प्रसिद्ध हैं वे इतने समझदार हैं कि उन्हें कभी न्यायालयमें जानेकी आवश्यकता नहीं होती। ईमानदार ऐसे हैं कि उन्हें घरमें ताला नहीं लगाना पड़ता और प्रतिज्ञापालनके लिये प्रतिज्ञापत्र नहीं लिखना पड़ता। कोई हिन्दुस्थानी ऐसा नहीं सुना गया है जो कभी झूठ बोला है"। इस वर्णनमें कुछ अतिशयोक्तिकी गन्ध है, पर एलफिंसटनके कथनसे मालूम होता है कि जिस समय उपर्युक्त बातें लिखी गयी थीं उसके बाद हिंदुओंके आचरणमें असाधारण परिवर्तन हुआ है। अतिशयोक्ति इतनी ही है कि वास्तविक बातको उचितसे कुछ अधिक बढ़ा कर लिखा गया है। पर इस वर्णनमें ठीक उन्हीं गुणोंका वर्णन अस्वाभाविक रूपमें किया गया है जिनकी कमी आधुनिक हिन्दु-

ओंके आचरणमें है। इसलिये आधुनिक यात्री इन्हीं विरोधी अवगुणोंका वर्णन बहुत बढ़ा चढ़ाकर करते हैं। वे हिन्दुओंपर यह दोष लगाते हैं कि उनमें सचाईका अभाव है, उनमें साहसका अभाव है और वे बड़े मामलेबाज हैं। पर यह परिवर्त्तन ठीक वैसा ही है जैसा बहुत दिनतक परतंत्र रहनेसे होना स्वाभाविक है।

सब बातोंका विचार करनेपर हम भारतवर्षमें तीन अवस्थाकी सभ्यता पाते हैं। पहली अवस्थाकी सभ्यता जङ्गली जातियोंकी है और यह वर्ब्बर अवस्थाकी सभ्यता है। इसके बाद मुसलमान अवस्थाकी सभ्यता है। तीसरी सभ्यता एक मेधावी जातिकी सभ्यता है जो अर्द्ध दलित और अवरुद्ध गतिकी अवस्थामें है। यह जाति प्रारम्भसे ही संसारके अन्य उन्नतशील शासक जातियोंसे अलग रही है। इस जातिने जो कुछ सफलता प्राप्त की थी वह पहले ही प्राप्त की थी। इसके पुराण महाकाव्य जिनकी तुलना कुछ लोग पाश्चात्य देशके महानसे महान काव्यग्रन्थसे कर सकते हैं बहुत पुराना है, पुराना ही क्यों जितना समझा जाता है उससे संभवतः कहीं अधिक पुराना है। इसकी दर्शन-पद्धति और वैज्ञानिक व्याकरणकी भी यही अवस्था है। आधुनिक समयमें इसने कुछ नहीं किया है। यूरोपकी प्राचीन सभ्यताओंपर भी वर्ब्बर जातिओंका आक्रमण हुआ था। इस आक्रमणके बाद यदि इन सभ्यताओंका पुनरुत्थान नहीं होता तो यूरोपकी तुलना हिन्दुस्थानसे की जा सकती थी। हम यह मानले कि

यूरोपकी अभी वही अवस्था है जो दसवीं शताब्दीमें थी। एशियासे बराबर आक्रमण हो रहे हैं, सङ्गठित और प्रबल राष्ट्रोंका अभाव है, इसकी सभी भाषाएं बोलचालकी हैं और साहित्यके लिये उनका प्रयोग नहीं होता। इसका सारा ज्ञानभण्डार एक मृत भाषामें बन्द पड़ा है और स्वार्थी पुरोहितों द्वारा थोड़ा थोड़ा लोगोंको मिलता है। इसका सभी ज्ञान कई शताब्दियोंका पुराना है। अरिस्टोटल, बाइबलके सन्तोंकी वाणी आदि पवित्र ग्रन्थ हैं जिनमें व्याख्याके सिवा कुछ और बढ़ाया नहीं जा सकता। हिन्दुस्थानके आर्य्योंकी भी यही अवस्था है। इसकी समानता किसी भी अंशमें असभ्य वर्ब्बरता नहीं कर सकती, पर यह यूरोपके मध्ययुगकी सभ्यताके अनुरूप है।

पाश्चात्य जातियोंपर रोमनोंका आधिपत्य असभ्यतापर सभ्यताका साम्राज्य था। गाल और इबेरियनोंके लिये रोमन पथप्रदर्शक ज्योति था। उन्होंने इसका तेज माना और इससे जो प्रकाश मिला उसके लिये वे इसके कृतज्ञ हुए। हिन्दुस्थानपर इङ्गलैंडका आधिपत्य मध्ययुगपर वर्तमान युगका साम्राज्य है। जो ज्योति हम लाये हैं वह वास्तविकतामें कम नहीं है। पर संभवतः यह चित्ताकर्षक कम है और इसका स्वागत थोड़ी कृतज्ञताके साथ किया जाता है। यह अन्धकारमें देदीप्यमान प्रभा नहीं है, बल्कि वसन्त ऋतुकी प्रभामुखरित ऊषामें शीतकालीन दिवसका प्रकाश है।

कितने व्यक्तियोंने लिखा है कि एक शिक्षित हिन्दू जब हमारी

शक्ति स्वीकार करता है और हमारी बनायी रेलगाड़ियोंमें चलता है उस समय भी वह हमें श्रद्धाकी दृष्टिसे नहीं देखता और सत्प्रेरणासे हमसे घृणा करता है? यह बिलकुल स्वाभाविक है। हम हिन्दूसे अधिक चतुर नहीं हैं। हमारा मस्तिष्क भी उससे बड़ा वा उससे अधिक परिपूर्ण नहीं है। जिस प्रकार असभ्य जातियोंके सामने हम उन विचारोंको जिसका स्वप्न भी उन्होंने नहीं देखा है, रख उन्हें चकित कर देते हैं, उसी प्रकार एक हिन्दूको हम चकित नहीं कर सकते। अपनी कवितासे वह हमारे उच्चतम विचारोंसे लोहा ले सकता है। हमारे विज्ञानमें भी संभवतः कोई ऐसी बात नहीं है जो उसके लिये बिलकुल नयी हो। हम इसका अभिमान नहीं करते कि हमारे विचार अधिक उच्च हैं वा वे अधिक प्रतिभापूर्ण हैं, पर हमारे विचार अधिक परीक्षित और ठोस हैं। मध्यकालीन वा प्राचीन सभ्यताकी अपेक्षा वर्त्तमान सभ्यताकी महत्ता यह है कि इसमें परीक्षित सत्योंकी संख्या अधिक है और इसलिये इसकी व्यावहारिक शक्ति अत्यन्त अधिक है। पर काव्यप्रेमी और तत्ववादी दार्शनिक परीक्षित सत्योंकी अधिक श्रद्धा करनेकी मनोवृत्ति नहीं रखता। इतना ही नहीं वह इसे छिछला समझता है, इसकी व्यावहारिक सफलतापर नाकभौं चढ़ाता है और स्वयं अथाह कल्पनामें गोता लगाता हुआ मग्न रहता है।

हम यूरोपवालोंमें इस सम्बन्धमें प्रायः एक राय हो गयी कि वह सत्यकोष जो पाश्चात्य सभ्यताका आधारभूत कारण है,

वह ब्राह्मणोंके अदृश्यवादसे ही नहीं बल्कि उस ज्ञान प्रकाशसे भी जिसे रोमन साम्राज्यने यूरोपकी जातियोंको दिया, कहीं अधिक ठोस है। इसलिये हम यह मान लेंगे कि विजेता जाति-द्वारा परिवर्द्धित हिन्दुस्थानकी वर्तमान सभ्यताका वही महत्व है जो रोमन साम्राज्यकी सभ्यताका था। इसके सिवा परीक्षा क्षेत्र भी करीब करीब उतना ही बड़ा है। इस साम्राज्यकी उपयोगिताका निर्णय बहुधा इस देशके निवासियोंकी तात्कालिक लाभकी दृष्टिसे लोग करते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि प्राचीन कालसे चली आनेवाली बुराइयोंको इसने दूर किया है तो दूसरे कहते हैं कि इसके कारण नयी नयी बुराइयां उत्पन्न हुई हैं। पर इस वादविवादमें सबसे मार्केकी जो बात है उसे लोग भूल जाते हैं। वह बात यह है कि हमारे इस साम्राज्यके कारण ब्राह्मण धर्म्ममें विश्वव्यापक यूरोपीय विचारका समावेश हुआ है। भूमण्डलमें इतने महत्वकी परीक्षा और कहीं नहीं हो रही है। और जब हम यह स्मरण करेंगे कि इस प्रकारके महत्वपूर्ण कार्य्य करनेका बहुत कम अवसर किसी राष्ट्रको मिलता है तो इसकी उन्नतिमें हमारी अभिरुचि हो जायगी और हमारी वह निराशा दूर हो जायगी जिसके कारण हम यह सोच सकते हैं कि इस प्रकारके कार्य्यसे हमें इस संसारमें क्या लाभ है।

अब हम इसका विचार करें कि इस परीक्षाके लिये हमें कितनी सुविधा है। रोमन साम्राज्यसे इसकी तुलना करनेपर

हमें यह स्पष्ट मालूम हो जायगा। रोम अपने साम्राज्यके बीच था, इसके कारण होने वाले प्रत्याघातका असर इसपर पड़ता था और इसपर वे सभी सङ्कट आसकते थे जो इसके साम्राज्यपर आनेवाले थे। इसके विरुद्ध इङ्गलैंएड जिस विशाल साम्राज्यपर शासन करता है उससे विलकुल अलग है और इस साम्राज्यका प्रत्याघात उसपर नहींके बराबर पड़ता है।

इतिहासका प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि साम्राज्यके बोझने ही रोमकी स्वतंत्रता अपहरण कर ली। प्राचीन नागरिक संस्थाएं जिनके कारण रोमन सभ्यता बनी थी इस सभ्यताके प्रचारके लिये ही नष्ट करदेनी पड़ीं। उसे अपेक्षाकृत निम्न श्रेणीका संगठन स्वीकार करना पड़ा। इसके सिवा जिस समय रोमने अपनी सभ्यताका प्रचार आरम्भ किया उस समय यह सभ्यता नष्ट हो चली थी। अपने साम्राज्यके ही एक भागमें इसकी भाषा यूनानी भाषाके सामने उठ गयी। इसे सम्राट मारकस आरेलियसने भी माना है। रोमन धर्म्म अपने भीतर दूसरोंको न ले सका बल्कि इसी साम्राज्यमें उत्पन्न एक दूसरे धर्म्मके सामने इसकी हार होगयी। एक समय ऐसा आया जब यह मालूम होने लगा कि रोमन साम्राज्यमें सारे रोमन विचार और भावोंकी मृत्यु हो गयी। इसके सम्राट् पूर्वी राजाओंके ऐसा हो गये और राजमुकट धारण करने लगे। पर अब हम जानते हैं कि बात ऐसी नहीं थी। रोमन प्रभाव और परम्परा यूरोपीय मस्तिष्कको कई शताब्दियोंतक प्रभावित करता रहा।

पर यह प्रभाव गुप्त रूपसे कानून और कैथोलिक सम्प्रदायके कारण पड़ा जिसका श्रेय साहित्य और कलासम्बन्धी पुनरुत्थानको है। अब सोचिये कि यदि यूरोपीय सभ्यताकी मातृ नगरी उन राष्ट्रोंके बीच नहीं होती जिन्हें इसने सभ्य बनाया था जो यदि उनसे उसी प्रमाणमें असभ्यता ग्रहण नहीं करती जिस प्रमाणमें इसने उन्हें सभ्यता दी, और जो यदि उन्हें पथ प्रदर्शन कराते हुए स्वयं अलग रह कर अपनी सभ्यताकी उन्नति करती जाती तो यूरोपका इतिहास कितना भिन्न हुआ होता।

इस दृष्टिसे विचार करनेके लिये रोम साम्राज्यका उदाहरण एक असाधारण बात है। क्योंकि जिस साम्राज्यको इसने जीता था इसकी तुलनामें जीतने वाली शक्ति बहुत छोटी थी। सभ्यताका प्रकाश एक देशसे नहीं बल्कि एक नगरसे फैला था जो एक आलोकबिंब नहीं बल्कि प्रखर प्रकाशका एक बिंदुमात्र था। रोमन प्रजातन्त्रकी संस्थाएं पूर्ण रूपसे नागरिक थीं इसलिये सम्पूर्ण इटलीमें ही इनका विस्तार करनेसे ये नष्ट होने लगीं। पर जहां विजयी शक्तिका आधार बड़ा भी होता है वहां भी विजयके प्रभावसे इसका रूप बदल जाता है। युद्ध जिनके द्वारा विजय की जाती है, और विजयको स्थायी बनानेके लिये जो प्रयत्न किया जाता है उनके कारण एक नयी शासन पद्धतिकी आवश्यकता उपस्थित हो जाती है पर इङ्गलैंड और उसके भारतीय साम्राज्यका सम्बन्ध बिलकुल दूसरे ढङ्गका है

और इसमें सबसे अद्वितीय बात यह है कि इङ्गलैंण्ड और भारतके बीच सम्बन्ध स्थापित करनेवाला प्रबन्ध-यंत्र बहुत नाजुक है और इसका प्रत्याघात इङ्गलैंण्डपर बहुत ही कम पड़ता है। ऐसी विचित्र अवस्था कैसे उत्पन्न हुई है यह मैं पहले बतला चुका हूं। मैंने यह बतलाया है कि हिन्दुस्थान हमें जिस तरकीबसे हाथ लगा उसमें हमारा कुछ नहीं लगा। यदि इङ्गलैंड राष्ट्रकी हैसियतसे महान मुगलसे लड़कर हिन्दुस्थानपर अधिकार जमाता तो उसकी घराऊ शासनसङ्घटना उसी प्रकार नष्ट हो जाती जिस प्रकार यूरोप विजय करनेमें रोमकी शासनसङ्घटना नष्ट हो गयी। क्योंकि तब उसे अपनेको एक उच्च श्रेणीका सैनिक राष्ट्र बनाना पड़ता। पर चूंकि इङ्गलैंडको हिन्दुस्थान कुछ अङ्गरेजोंसे जो अराजकताके समय हिन्दुस्थानके शासक बन गये थे, मिल गया इसलिये इसके कारण इसकी घरा नीतिमें कोई गड़बड़ी नहीं हो सकी। मैं पहले कह चुका हूं कि इसके कारण इङ्गलैंडकी पर-राष्ट्रनीति बहुत बदल गयी है, पर इसकी घराऊ नीति हिन्दुस्थानके कारण कुछ भी नहीं बदली है। इस सम्बन्धमें भारतवर्षके कारण इङ्गलैंडपर इतना ही अल्प प्रभाव पड़ा है जितना अल्प प्रभाव जार्जके अधीन हैनोवर और विलियम तीसरेके अधीन हालैंडके इङ्गलैंडके साथ आनेसे पड़ा था। इसका परिणाम यह है कि इस संबन्धमें उच्च सभ्यताका प्रभाव निम्न सभ्यतापर रोमन और यूनानी सभ्यताका प्रभाव जो पूर्वीय देशोंपर पड़ा था

उसकी अपेक्षा अधिक प्रबल और अधिक समयतक पड़ेगा। और यूनानके सम्बन्धमें ऐसा हुआ कि उच्च सभ्यताने निम्न सभ्यताको जितना ऊपर उठाया उसी परिमाणमें निम्न सभ्यताने उच्च सभ्यताको नीचे गिराया। यूनानी सभ्यता पूर्व्वमें छागयी, पर यूनानका गौरव नष्ट हो गया। सभी जातिके लोगोंको रोमन नागरिकता मिल गयी पर स्वयं रोमन लोगोंकी क्या अवस्था हुई? इसके विपरीत इङ्गलैंडसे जितने सद्गुण दूसरोंको मिले हैं उनके कारण यह स्वयं कमजोर नहीं हुआ है। वह हिन्दुस्थानको मध्ययुगकी स्थितिसे वर्त्तमान युगकी स्थितिपर उठाना चाहता है। इस कार्य्यमें इसे कठिनाई होती है, जोखिम भी है। पर यह भय नहीं है कि हिन्दुस्थान इङ्गलैंडको पीछे हटा देगा या उसकी स्वाभाविक प्रगतिमें वाधा डाल सकेगा।

यद्यपि वहुत दिनोंतक यह निश्चित नहीं हो सका था कि यही परिणाम होगा। तौ भी परिणाम यही हुआ है। व्रिटिश भारतके इतिहासमें दो परिच्छेद बड़े महत्वके हैं। मेरी रायमें तो संसारके इतिहासका कोई परिच्छेद इस प्रकार शिक्षाप्रद नहीं है। इससे हमें मालूम होता है कि हिन्दुस्थानसे इङ्गलैंडपर होनेवाला हानिकारक प्रत्याघात किस प्रकार रोका गया और किस प्रकार वहुत विलम्बके वाद यूरोपीय सभ्यताका प्रभाव हिन्दुस्थानपर डालना निश्चित किया गया। पहले परिच्छेदका सम्बन्ध जार्ज तीसरेके पुर्व्वार्द्धकालसे है जो इङ्ग-

लैंडके इतिहासमें एक परिवर्तनका समय है। इसी समय अमेरिका इङ्गलैंडके हाथसे निकल गया और हिन्दुस्थान इसके अधीन आया। यह क्लाइव और हेस्टिंग्सके समयका युग है और इसका अन्त लार्ड कार्नवालिसके शासन कालमें हुआ जिसका आरम्भ १७८५ से हुआ था। दूसरे परिच्छेदका सम्बन्ध इस शताब्दी (१९ वीं शताब्दी) के प्रथम चालीस वर्षोंसे है। इस अवधिका सबसे उज्ज्वल समय लार्ड विलियम बेंटिकके गवर्नरशिपका काल है। हिंदुस्थानके ब्रिटिश शासकोंमें हेस्टिंग्सके बाद लार्ड कार्नवालिस और लार्ड विलियम बेंटिक दो बड़े व्यवस्थापक हुए हैं। इसी प्रकार क्लाइवके बाद लार्ड वेल्सली लार्ड हेस्टिंग्स और लार्ड डलहाउजी बड़े विजेता हुए हैं। पर जब हम साम्राज्यकी सभ्यताका विचार कर रहे हैं तो विजेताओंकी अपेक्षा व्यवस्थापकोंकी ओर विशेष ध्यान जाना स्वाभाविक है।

इसलिये हम पहले यह देखेंगे कि प्रारम्भमें इङ्गलैंडको हिन्दुस्थानसे क्या भय था और यह भय किस प्रकार दूर हुआ। १८ वीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध भागका साहित्य इस प्रकारकी आशङ्कासे भरा हुआ है और बाद हेस्टिंग्सके (१) विरुद्ध बर्कके (२)

---

(१) लार्ड हेस्टिंग्स ब्रिटिश भारतका सर्व्व प्रथम गवर्नर जेनरल हुआ।

(२) बर्क प्रसिद्ध अङ्गरेज राजनीतिज्ञ और वक्ता जिसने हेस्टिंग्स द्वारा हिन्दुस्थानमें किये गये कुकृत्योंकी कड़ी आलोचना पार्लमेंटमें की थी और

जो व्याख्यान हुए उनमें यह आशङ्का बड़े जोरदार शब्दोंमें व्यक्त हुई है। इङ्गलैंड हिन्दू (१) राजनीतिके अज्ञात गर्तमें एकाएक कूद पड़ा था। अङ्गरेज मुसलमान नवाबोंकी भाड़ेकी सेनाओंके सेनापति और अर्थ सचिव आदि हो रहे थे और मुगल साम्राज्यकी लूटका माल लेकर इङ्गलैंड लौटते थे। उन्हें यह सम्पत्ति कैसे मिलती है यह किसीको मालूम नहीं था। इसमें दो भय था। पहला भय यह था कि ब्रिटिश आचार नष्ट न हो जाय क्योंकि गत शताब्दीमें (१८ वीं शताब्दी) हिन्दू राजनीति ऐसी दूषित हो गयी थी कि हिन्दू आचरणके पक्षपाती भी इसे अकथनीय रूपमें दूषित कहते हैं। दूसरा भय यह था कि सम्भव है कि एशियाई विचारके ये धनी अङ्गरेज ब्रिटिश राजनीतिमें प्रवेशकर कानस्टिच्युशनको ही न बदल दें। पुराने निर्वाचक नियमके कारण यह भय और भी बढ़ गया था। क्योंकि इस नियममें यह गुंजायश थी कि ब्रिटिश पार्लमेंटकी जितनी जगह हो, बेंची जासकती थी। यह काल ऐसा था जिसमें सरकारकी शक्ति पुरस्कृत करनेपर ही अधिक अवलम्बित थी। हिन्दुस्थानके द्वारा यह काम खूब हो सकता

उसपर अभियोग लायाथा। (वर्कके व्याख्यान बड़े ही राजनीतिक महत्वके हैं।)

(१) यहां हिन्दूका अर्थ हिन्दुस्थान है अन्यथा इसका कोई मतलब नहीं हो सकता।

था और चाहे सम्राट् हों चाहे ह्वीगपार्टी जिसके ही हाथ यह सुअवसर लगता वही देशमें सबसे महान हो जाता।

यह भय उस समयके प्रमुख व्यक्तियोंमें कितना व्याप्त था इसका उदाहरण देनेके लिये हम विलियम पिटके एक व्याख्यानके अंशका अवतरण देते हैं। यह व्याख्यान १७८२ में पार्लमेंटरी सुधारके सम्बन्धमें दिया गया था। उन्होंने कहा, "हमारे कानूनने इस बातका बहुत ख्याल रखा है कि पार्लमेंटमें प्रतिनिधि भेजनेके लिये एक भी विदेशी वोट न देसके, पर तो भी हम देखते हैं कि विदेशी राजे और नवाव केवल वोटका ही नियन्त्रण नहीं करते बल्कि पार्लमेंटमें ही जगह खरीद लेते हैं और इस सभामें अपने एजेंटोंको राष्ट्रके प्रतिनिधियोंके साथ बैठनेको भेजते हैं। मेरा संकेत किस ओर है इसे प्रायः सभी समझते होंगे। हमारे साथ तंजोरके राजा और आरकटके नवाब और अन्य पूर्वी निरंकुश राजाओंके प्रतिनिधि बैठे हैं, यह बहुत ही बुरा है, सार्वजनिक रूपमें इसकी चर्चा होती है, पर भाव उपेक्षाका ही रहता है। हमारी निर्लज्जा मूर्त्तिमान हो फिर रही है पर हमारे लिये यह इस प्रकार अभ्यासकी बात हो गयी है कि हमें इसमें कोई आश्चर्य्य नहीं जान पड़ता। इङ्गलैण्डके वोटरोंने विश्वासघातपूर्वक अपना वोट विदेशियोंके हाथ बेंच दिया है। हमारे सिनेटके सदस्य सुदूर विदेशियोंकी रायसे काम करते हैं, वे अब ब्रिटेनके सद्गुणके नहीं, पूरबके दुर्गुणके प्रतिनिधि हैं पर तो भी हम इसे एक सामान्य

बात समझते हैं।" फाक्सके विलके सम्बन्धमें गङ्गा यमुनी मन्त्रिमण्डलका पतन, वारेन हेस्टिंग्सपर अभियोग, लार्डकार्नवालिसका गवर्नर जेनरल होना और उनके द्वारा भारतीय शासन-सुधार आदि इस द्वंद्वकी मुख्य घटनाएं हैं। मैंने मुख्य घटनाओंका केवल नाम ले लिया है सो भी यह दिखलानेके लिये कि उनका महत्व क्या है और उनका परिणाम क्या हुआ। यदि मैं इसका ब्यौरेवार विचार करता तो यह बतला देता कि फाक्सके इण्डिया बिलके सम्बन्धमें जो हल्ला मचाया गया था वह अधिकांशमें अनुचित था और वारेन हेस्टिंग्सपर जो आक्षेप हुए थे उसमें बहुत कुछ अकारण हिंसा भाव था इसी प्रकार पिटके बिलसे जो द्वैध शासन प्रणाली चल पड़ी उसकी भी आलोचना हो सकती है। पर व्यापक दृष्टिसे देखनेपर यह कहना पड़ेगा कि जिन भयोंकी आशङ्का थी वे बड़ी खूबीके साथ टाल दिये गये। लार्ड कार्नवालिसका नाम कृतज्ञताके साथ लेने योग्य बन गया और बर्कने अमर यश स्थापित किया। कार्नवालिसके शासनमें कम्पनीके शासनमें फैला हुआ कदाचार ऐसा विलीन हुआ मानो जादूके प्रभावसे उड़ गया। गवर्नर जेनरलके लिये सदा स्मरण रखनेवाली शिक्षा मिल गयी और हिन्दुस्थानके सम्बन्धसे जिस राजनीतिक विपत्तिकी सम्भावना थी वह सदाके लिये दूर हो गयी।

जिस चक्करमें इङ्गलैण्ड फसना चाहता था उसे वह पार कर गया। इङ्गलैण्ड इस प्रकार हिन्दुस्थानका प्रभाव अपनेपर

नहीं पड़ने दिया, पर इमे हिन्दुस्थानपर प्रभाव डालनेकी क्या योग्यता थी? हिन्दुस्थानकी सभ्यता और हमारी सभ्यतामें जो महान अन्तर था उसे समझनेमें हमने भूल नहीं की और सब बातोंको मिलाकर देखनेपर अपनी सभ्यताको ही अच्छा समझनेमें भी हमने गलती नहीं की। पर देशके रहनेवालोंपर अपना विचार जतानेका क्या कोई अधिकार हमें था? हमारा अपना ईसाई धर्म था, हमारे अपने दार्शनिक विचार थे, अपना इतिहास और विज्ञान था. पर क्या सरकारी तौरपर इनको अलग रखनेके लिये देशके निवासियोंके साथ एक प्रकारकी नैतिक प्रतिज्ञासे बद्ध नहीं थे? पहले यही विचार था। यह बात स्वीकार नहीं की जाती थी कि इङ्गलैंण्डको हिन्दुस्थानमें वही करना है जो रोमने अपने साम्राज्यमें किया। उसे अपनी सभ्यता अलग रखनी चाहिये और हिन्दुस्थानका शासन हिन्दुस्थानी विचारसे करना चाहिये। इस विचारमें बड़ा जोर था क्योंकि पहली पीढ़ीके ऐंग्लो-इण्डियनोंके सामने संस्कृत साहित्यका नया और रहस्यमय भाण्डार प्रकट हो रहा था। अतीत दर्शन और विस्मयपूर्ण इतिहासका जादू उनपर चल गया था। जैसा कि कहा जाता था वे ब्राह्मनाइज्ड हो गये थे और अपनी प्राच्य परिधिके भीतर ईसाई धर्म या पाश्चात्य देशके किसी ज्ञानका प्रवेश होने देना नहीं चाहते थे।

यहां हम अधिक विस्तारके साथ विवेचना नहीं करना

चाहते। यहां केवल यही बतलावेंगे कि क्रमशः किस प्रकार हमने यह विचार त्याग दिया और साहसके साथ शिक्षक और सभ्य बनानेका स्थान ग्रहण कर लिया। कम्पनीको नया चार्टर मिलनेपर सन् १८१३ में कला और विज्ञानकी उन्नतिके लिये कुछ व्यय करनेकी आज्ञा मिली। यहींसे यह परिवर्तन आरम्भ हुआ। इस कानूनके बाद एक शिक्षा कमिटीने बीस वर्षतक अपना सिर खपाया। प्रश्न था, हम अपने विचारसे काम लें या ज्ञान और विज्ञानका अर्थ प्राच्य दृष्टिसे करें। संस्कृत और अरबीकी शिक्षा दी जाय या अंगरेजीकी।

इस भूमण्डलपर इससे अधिक महत्वके प्रश्नका विचार कभी नहीं हुआ था। लार्ड विलियम वेंटिंकके समय १८३५ में यह प्रश्न एक ढङ्गपर आ गया और घटनाचक्रसे एक प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं मौजूद था जिससे इस वादविवादको लाभ पहुंचा और इस वादविवादसे उसे लाभ पहुंचा। मैकालेकी मिनटने अङ्गरेजीके पक्षमें निर्णय देदिया। इस रिपोर्टमें या भारतीय शिक्षा सम्बन्धी सर सी० ट्रेवेलियनकी पुस्तकमें विशेष बातें जानी जा सकती है। सारा वादविवाद इसीपर था कि संस्कृत या अरबीमें शिक्षा हो या अङ्गरेजीमें। साधारण जनताके लिये ये तीनों भाषाएं पूर्ण रूपसे अज्ञात हैं। अरबी और अङ्गरेजी विदेशी भाषा हैं और हिन्दुओंके लिये संस्कृत वैसी ही है जैसी यूरोपवालोंके लिये लेटिन भाषा। यह मूल भाषा है जिससे बोलचालकी प्रधान भाषाकी उन्नति हुई है पर

स्वयं अब यह मृत भाषा है। इसकी मृत्यु लेटिनसे पहले हो चुकी है, क्योंकि ईसाकी तीसरी शताब्दीसे ही यह बोलचालकी भाषा नहीं है। संस्कृतके अनेक धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथ कृत्रिम रूपसे विद्वानों द्वारा ठीक उसी प्रकार लिखे गये जिस प्रकार विडा (१) और सेनाजारोने (२) लेटिनमें कविताएं लिखीं। संस्कृतके साथ मेकालेने बड़ी आसानीसे बाजी मार ली क्योंकि उसे केवल यही दिखलाना पड़ा कि कमसे कम संस्कृतके समान अङ्गरेजीमें पद्यसाहित्य है और दर्शन, इतिहास और विज्ञान बहुत बढ़ाचढ़ा है, पर मृत भाषाओंमें ही चुनाव क्यों किया गया ? क्या वास्तवमें मैंकालेने यह सोचा था कि २५ करोड़ एशियाइयोंको अङ्गरेजीकी शिक्षा देना संभव है ? संभवतः उसका विचार कुछ लोगोंको शिक्षित बनाना ही था। मेरी धारणा है कि स्वयं लेटिन आदि प्राचीन भाषाओंका अध्ययन करनेके कारण उसमें यह पक्षपात आगया था कि शिक्षाके लिये प्राचीन भाषा आवश्यक हैं। पर वास्तवमें यदि हिन्दुस्थानको शिक्षित बनाना है तो यह स्पष्ट है कि न तो

---

(१) विडा एक एटालियन विद्वान और कवि जिसका जन्म १४९० में हुआ था और मृत्यु १५६६ में। लेटिन भाषामें साहित्य और राजनीतिके ग्रन्थोंको लिखकर इसने बड़ी प्रसिद्धि पायी थी।

(२) सेनाजारो भी इटालियन कवि था इसका जन्म १४५८ में और मृत्यु १५३० में हुई।

शिक्षाका माध्यम होना चाहिये संस्कृत न अरबी और न अङ्ग्रेजी। शिक्षाका माध्यम होना चाहिये भाषा जो बोली जाती है अर्थात हिन्दी, हिन्दुस्थानी, बङ्गला आदि। यह सोचकर कि दर्शन, विज्ञान आदिकी शिक्षाके लिये अभी इनमें बहुत त्रुटि है, मैकालेने इनपर विचार ही नहीं किया, पर इनके सामने संस्कृतके समर्थनमें दिये गये उसके तर्क व्यर्थ हो जाते।

इस प्रकार यह एक बड़ी भारी भूल हुई। पर सर चार्लस-वूडने सन् १८५४ में जो शिक्षा सम्बन्धी खरीता भेजा उसमें इसका सन्शोधन भी किया गया। फिर भी मेकालेका यह कार्य्य सभ्यताकी पीठकी हैसियतसे हमारे इतिहासका एक प्रधान स्मारक स्तूप है। इसीके बादसे हमारा वह काल आरम्भ होता है जिसमें हमने अच्छी तरह यह समझ लिया कि हमें वह कार्य्य करना है जो रोमने अपने साम्राज्यमें किया और जिससे महान कार्य्य सरकारोंके लिये दूसरा नहीं है।

पांचवां परिच्छेद

भारत विजयकी प्रेरणा

गत परिच्छेदोंमें हमने जो कुछ कहा है उसमें एक बात यह है कि हिन्दुस्थान और इङ्गलैंडके बीच सम्बन्ध स्थापित करानेवाला विधान बहुत ही संक्षिप्त है। इस बारेमें उपनिवेश और भारतवर्ष दोनों समान हैं। पर महान अन्तर यह है कि उनको अपनी शासननीति निश्चित करनेकी स्वतंत्रता है, अपना कानस्टिच्युशन है। हिन्दुस्थानको अपनी रायसे काम करनेकी ऐसी स्वतन्त्रता नहीं है, वाइसराय स्वयं भारतसचिवके अधीन हैं जो उनकी बात रद्द कर दे सकते हैं। पर एक बड़ी समानता यह है कि भारतीय शासनका कार्य्य उपनिवेशोंके शासनकी तरह दूर ही रखा गया है। कभी ऐसा अवसर नहीं मिलने पाया है कि वह हमारे घराऊ शासनसे संलग्न होजाय या उसपर प्रभाव डाल सके। हिन्दुस्थान शासनकी दृष्टिसे तथा आर्थिक दृष्टिसे एक अलग साम्राज्य है। यदि मुगलराज अबतक वर्तमान रहता तो इसमें सन्देह नहीं कि इङ्गलैंडका परराष्ट्र-सम्बन्धी इतिहास बिलकुल विभिन्न होता। फ्रांसके साथ हमारी कितनी लड़ाइयोंका ढङ्ग बिलकुल दूसरा होता, कमसे कम उस युद्धका जिसकी मुख्य घटना मिश्रपर बोनापार्टका

आक्रमण है। संभवतः क्रिमियिन युद्ध होता ही नहीं। और हम रूस और तुर्कोंकी लड़ाईमें वह दिलचस्पी नहीं दिखलाते जो हमने दिखलायी है। पर अङ्गरेजी राजकी शासन सङ्घटना वही होती और हमारा घराऊ सभी काम वैसे ही एक ढङ्गपर होता आता। केवल एक बार सन् १७७३ में हिन्दुस्थानकी बात पार्लमेंटमें छिड़ गयी थी और सारे संसारका ध्यान इस ओर खिंच गया था। १८५७ में गदरके समय हमारे भाव बड़े उद्विग्न हो गये थे फिर भी हिन्दुस्थानी मामलोंका कोई प्रभाव घराऊ राजनीतिमें नहीं पड़ा।

इस प्रकार यदि हमारा भारतीय साम्राज्य हमारे हाथसे निकल जाय तो इस परिवर्तनका राजनीतिक महत्व कुछ बहुत नहीं होगा। एक सचिवका पद उठ जायगा। पार्लमेंटका बोझ हलका हो जायगा। विदेशी राजनीतिमें हमारी चिन्ता बहुत घट जायगी। इसके सिवा शीघ्र कोई परिवर्तन नहीं होता। इस सम्बन्धमें उपनिवेश और हिन्दुस्थान दोनों एक जैसे हैं। इङ्गलैंडके विस्तारकी यही खूबी है। यह विस्तार प्राणियोंके शरीरके विस्तारके नियमके अनुकूल नहीं है। जब बालक युवा होता है तो उसमेंसे बालपनका लोप हो जाता है। उसके शरीरमें कोई बाहरसे ऐसा अंश आकर नहीं जुट जाता जो अलग निकाल लिया जा सके। पर इङ्गलैंडका विस्तार इसी प्रकार हुआ है। क्योंकि महान ब्रिटेनके बीच मूल ब्रिटेन ज्योंका त्यों दिखलायी देता है, आज भी उसका स्वतन्त्र

व्यक्तित्व है. उसे उपनिवेशोंकी तरह हिन्दुस्थानको भी अपने साथ मिलाकर सोचनेका अभ्यास नहीं पड़ा है।

टरगटने * उपनिवेशोंकी तुलना फलोंसे की है जो पेड़पर तभीतक लटके रहते हैं जबतक पकते नहीं। और यही स्वाभाविक भी है कि भिन्न भिन्न देशके अङ्गरेज समाजको एक न समझ एक परिवार समझा जाय। हम यह कह सकते हैं कि महारानी एलिज़ावेथके समयका इङ्गलैंडका एक वड़ा परिवार है जो समुद्रपार दूर दूर देशोंमें फैल गया है। इसीमें एक व्यापारिक सङ्घ भी है जो भाग्यवश एक महान देशका शासक बन गया है। इस प्रकारका यदि रूपक बांधा जावे तो उसमें कोई आपत्ति नहीं है। पर इसे ही तर्क मान लेनेमें हानि है। हम जानते हैं कि वर्तमान समाजमें परिवारकी गति पार्थक्यकी ओर है। यह एक सुसङ्गठित परिवार तभीतक रहता है जबतक लड़के नावालिग रहते हैं। इसके वाद इसके बन्धन ढीले होने लगते हैं। लड़के सयाने होनेपर रोजीकी खोजमें निकल जाते हैं और लड़कियोंका ब्याह होजाता है। इसके बाद परिवारका प्रायः अन्त हो जाता है। हम चाहें तो अपने साम्राज्यको एक परिवार कह सकते हैं। पर परिवार कहनेके कारण हम इसके अन्तिम भाग्यके सम्बन्धमें वही

---

* टरगट एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री था जिसका समय १८ वीं शताब्दीका मध्यकाल है।

निश्चय नहीं करसकते जो उपर्युक्त परिवारके विषयमें कहा गया है। परिवारोंके पार्थक्यके जो कारण हैं वे ही साम्राज्यके पार्थक्यके कारण नहीं हैं और न उस प्रकार उनका प्रभाव पड़ता है। यदि पहले कुछ पड़ता भी हो तो अब वह अवस्था नहीं है। टरगट और अमेरिकाकी क्रांतिके समयमें सुदूर उपनिवेश और विदेश गये लड़केकी तुलनामें बहुत जोर था क्योंकि दोनों प्रायः परिवारसे बाहर थे। पर वह अवस्था अब नहीं है। वैज्ञानिक अविष्कारोंके कारण सारा भूमण्डल एक दूसरेसे संलग्न हो गया है और प्राचीन कालमें अज्ञात नये ढङ्गकी सरकार अमेरिका और रूसमें स्थापित हो गयी है।

इङ्गलैंडका उपनिवेशों और हिन्दुस्थानसे जो सम्बन्ध है वह बहुत अल्प है इसका स्वाभाविक परिणाम जो निकल सकता है उसे स्वीकार करनेमें हमें कुछ संकोच न करना चाहिये। उपर्युक्त विचार हमें यही बतलाता है। ऊपर मैंने बतलाया हैं कि उपनिवेशोंका मातृभूमिसे बहुत अल्प सम्बन्ध है जिसके कारण अमेरिका स्वतन्त्र हो गया। पर यह सम्बन्ध दिन प्रति दिन कमजोर नहीं होता गया है जेसा कि प्रत्यक्ष परिणाम इसको हो सकता था। बल्कि उलटे यह मजबूत हुआ है वे मातृ भूमिके और निकट आ गये हैं। पुरानी औपनिवेशिक शासन-प्रणालीमें जो बुराइयां थीं वह निकाल दी गयीं और इङ्गलैंडकी बढ़ती हुई जनसंख्याके लिये एक प्राकृतिक निकास हो गया है। प्राचीन कालमें जब इङ्गलैंडकी जन संख्या आवश्यकतासे

अधिक नहीं थी तो वे ही लोग उपनिवेशोंमें भेजे जाते थे जो अपराधी थे या जिन्होंने राज्यके प्रति कोई अपराध किया था। इससे उनमें असन्तोष रहता था और जो देश उन्हें छोड़ना पड़ा था उसके प्रति स्वाभाविक ही उनको द्वेष हो जाता था। हिन्दुस्थानके सम्बन्धमें भी यही नियम लागू है। जिस विधानसे दोनोंका सम्बन्ध कायम है वह भी बहुत कमजोर है। भारतवर्षके सम्बन्धके कारण इङ्गलैंडकी उन्नति नहीं रुकी है। यद्यपि अधीनस्थ देश बहुत बड़ा है फिर भी इङ्गलैंड वैसा ही है जैसा इसे प्राप्त करनेके पहले था। इसलिये इङ्गलैंड सम्बन्ध विच्छेदके लिये सदा तैयार रहेगा, यद्यपि यह सम्बन्ध बिना किसी राजनीतिक परिवर्तनके आज सौ वर्षसे चलता आया है। पर यदि यह परिणाम निकाला जाय कि ऐसा नाजुक सम्बन्ध एक न एक दिन टूटेगा ही। तब हमें यह सोचना होगा कि इस सम्बन्धका झुकाव किस ओर है। क्या यह कमजोर सम्बन्ध दिन दिन कमजोर होता जाता है या दिन दिन मजबूत हो रहा है। ऐसा विचार करनेसे हमें मालूम होगा कि आधुनिक राजनीतिक धारणाके कारण जिस प्रकार उपनिवेशोंके साथ उसी प्रकार हिन्दुस्थानके साथ भी हमारा सम्बन्ध दिन प्रति दिन मजबूत हो रहा है।

१८११ में याने कम्पनीको जब हिन्दुस्थानके व्यापारका इजारा था इस व्यापारका महत्व जरसी या मान द्वीपसे होनेवाले इङ्गलैंडके व्यापारसे अधिक नहीं था। यदि व्यापार

दो देशों या जातियोंको मिलाता है और एकताकी वृद्धि या विनाशका माप यही हो तो हम दोनों देशोंके पूर्व और वर्तमान व्यापारकी तुलना करेंगे। पहले यह धारणा थी कि हिन्दुओंका स्वभाव अपरिवर्तनशील है और यूरोपीय वस्तुओंका व्यवहार वे कभी नहीं करेंगे। पर अब हम अपने व्यापारकी, जो हिन्दुस्थानसे होता है, तुलना जरमनी या मान द्वीपसे नहीं करते बल्कि संयुक्त राज अमेरिका और फ्रांससे करते हैं। ये मसा-रके सबसे बड़े व्यापारिक देश हैं। यद्यपि इन दो देशोंकी अपेक्षा हिन्दुस्थानसे लाभ हमें कम है (१८८१ में * हिन्दु-स्थानसे ३ करोड़ २० लाख, फ्रांससे ३ करोड ८० लाख और संयुक्त राज्य अमरिकासे करीब १० करोड़) फिर भी इंगलैंड माल भेजनेवालोंमें हिन्दुस्थानका दर्जा इनके बाद ही है। पर इङ्गलैंडसे माल मंगानेवाले देशोंमें संयुक्तराज्य अमेरिकाको छोड़ हिन्दुस्थान संसारके सब देशोंसे आगे है। हिन्दुस्थानने २ करोड़ ८० लाखका माल मंगाया और अन्य देशोंमें जो सबसे

---

* यह १८८१ की बात है। अब हिन्दुस्थानका इङ्गलैंडके साथ व्यापार बहुत बढ़ गया है। अब औसत दर्जे हिन्दुस्थान इङ्गलैंडसे प्रतिवर्ष ३ अरबका माल मंगाता है और २ अरब ५० करोड़का माल भेजता है। ३ अरबके मालके बदले ३॥ अरबका माल भेजनेका कारण यही है। इङ्गलैंड बनी हुई चीज भेजनेसे नफा कमाता है और कच्चा माल भेजनेसे हिन्दुस्थान घाटा सहता है।

आगे थे अर्थात आस्ट्रिया और जर्मनी, उन्होंने केवल २ करोड़ १० लाख और १ करोड़ ७० लाखका ही माल मंगाया।

इस प्रकार बड़ी ही उन्नति हुई है और इससे यही मालूम होता है कि दोनों देश दिन प्रति दिन अलग नहीं हो रहे हैं, बल्कि उनकी पारस्परिक निकटता बढ़ती जाती है। तब कहा जासकता है कि इङ्गलैंड और भारतके सम्बन्धविच्छेदका राजनीतिक महत्व चाहे न हो, पर व्यापारिक महत्व तो बहुत है। क्योंकि यह स्मरण रखना चाहिये कि हमारे राजनीतिक सम्बन्धके ही कारण यह व्यापार है। इसलिये यदि हिन्दुस्थान स्वतन्त्र होगा तो यह व्यापार नष्ट हो जायगा। यदि हिन्दुस्थान रूस * या अन्य यूरोपियन देशके हाथ चला गया तब तो यह व्यापार अवश्य ही नष्ट हो जायगा। इस शताब्दीके प्रारम्भमें हम विना विशेष चिन्ताके अपना सम्बन्ध विच्छेद कर ले सकते थे। मद्रास, बम्बई और कलकत्तेके व्यापारिक कोठियोंके लिये फ्रांसीसियोंसे जो लड़ाई हुई उसमें विशेष स्वार्थ नहीं था ‡। कारण, इनके द्वारा होनेवाला व्यापार बहुत अल्प

---

* अङ्गरेजोंके लिये रूसका भूत बहुत पुराना है। अफगानके साथ युद्ध और सन्धिमें हिन्दुस्थानके जो रुपये व्यय हुए हैं उसका कारण यही रूसी हौआ है। पहले रूसी ज़ारशाहीका हौआ था अब ज़ारशाहीके अन्त होनेपर रूसीबोलशेविकोंका भूत और भयानक हो गया है।

‡ इङ्गलैंडका यह व्यापारिक स्वार्थ नष्ट नहीं हुआ है बल्कि बढ़ा

था। पर अब ऐसा हो नहीं सकता। हिन्दुस्थानमें अब हमारा व्यापारिक स्वार्थ बहुत हो गया है और इस प्रकार हम पहलेसे अधिक बंध गये हैं। प्रारम्भमें हिन्दुओंके (हिन्दुस्थानियोंके) मामलोंमें हमारा कोई स्वार्थ नहीं था जिनके बीच हमारी व्यापारिक कोठियां थीं। मुगलसाम्राज्य या मुगलसाम्राज्यके विनाशसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं था। इसी प्रकार हमारा यह देखना भी काम नहीं था कि हिन्दुओंके बीच कुशासन है, कोई शासन नहीं है, अराजकता है या वे लुटेरोंके झुण्ड हैं। हमने जब उनके साथ लड़ना आरम्भ किया तो उस समय भी उनके लिये नहीं बल्कि कुछ तो फ्रांसीसियोंका विरोध करनेकी गरजसे और कुछ अपनी कोठियोंकी रक्षाकी गरजसे। कम्पनीका राज हो जानेके बहुत दिन बादतक भी हिन्दुस्थानियोंके हित और स्वार्थकी ओर हमारी ऐसी ही उपेक्षा थी। वैरेन हेस्टिंग्सके राजत्वके आरम्भकालमें अडमस्मिथने लिखा है कि आजतक संसारमें अपनी प्रजाके हितकी उपेक्षा करनेवाली ऐसी कोई सरकार नहीं हुई है। एक व्यापारिक कम्पनीका एकाएक शासक बनजानेका यह बिलकुल स्वाभाविक परिणाम था। यह द्वैध अवस्था

है। पहले यह एक कम्पनीका स्वार्थ था अब यह अङ्गरेज जातिमात्रका स्वार्थ हो गया है। हिन्दुस्थानको अपने अधीन रखनेके जितने प्रलोभन हैं उनमें सबसे बड़ा प्रलोभन आज भी वही व्यापार है।

बहुत दिनोंतक नहीं रह सकती थी। सन् १८५८ के बाद यह अवस्था बदल ही गयी। इस प्रकार स्वार्थका नामतक नष्ट हो गया है। अब सरकार प्रजाके हितकी कामना पितावत् करती हैं और इतना ही नहीं इसने उच्च सभ्यताकी शिक्षा भ देना आरम्भ कर दिया है, बिना इसकी परवा किये कि हिन्दू इसे चाहते हैं या नहीं।

साथ ही टेलिग्राफके प्रयोग और स्वेजनहरके द्वारा जलमार्गसे हिन्दुस्थान पहलेसे अब बहुत निकट हो गया है। कहा जाता है कि यह बुरा हुआ। भारतीय मामलोंमें ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल और उससे भी अधिक बृटिश लोकमतका हस्त-क्षेप आपत्तिजनक है। बहसके लिये हम इसे मान लें। हिन्दुस्थान और इङ्गलैंडके बीच घनिष्ठता होनी चाहिये या नहीं अब यह प्रश्न ही नहीं रहा। वस्तुस्थिति यही है कि चाहे भला हो या बुरा हिन्दुस्थान और इङ्गलैंडका सम्बन्ध घट नहीं रहा है बल्कि बढ़ता जाता है।

एक बार फिर हम यह दिखलाना चाहते हैं कि यह संबन्ध कैसी तेजीके साथ बढ़ रहा है। मि० कनिंगहमने अपनी पुस्तक "ब्रिटिश इण्डिया ऐण्ड इट्स रूल" (ब्रिटिश भारत और इसका शासन) में १८२० और १८८० के बीच हिन्दुस्थानके विदेशी व्यापारकी तुलना इङ्गलैंडके विदेशी व्यापारसे की है। यह व्यापारवृद्धि आश्चर्यजनक रीतिमें हुई है। अङ्गरेजी विदेशी व्यापार ८ करोड़से ६५ करोड़ हो गया है। पर

मि० कैनिंगहमने लिखा है कि हिन्दुस्थानी विदेशी व्यापारकी उन्नति इससे भी अधिक हुई है और चूंकि हिन्दुस्थानका मुख्य विदेशी व्यापार इङ्गलैंडसे ही है, इसलिये यही सिद्ध होता है कि दोनों देशोंका पारस्परिक सम्बन्ध बहुत बढ़ा है और यदि कोई दुर्घटना नहीं हुई तो पचास वर्षमें यह सम्बन्ध अकथनीय रूपसे घनिष्ठ हो जायगा।

अपने भारतीय साम्राज्यका स्वरूप निश्चित करनेके लिये यदि हम उन सब बातोंपर विचार करें जो हम बतला चुके हैं तो इसका परिणाम बड़े मार्केका होगा। यह साम्राज्य रोमन साम्राज्यकी तरह है जिसके हम केवल शासक ही नहीं है बल्कि इसे शिक्षा और सभ्यता देनेवाले भी हैं। यह साम्राज्य जिसका शासन हम अलग रहकर करते हैं हमें कोई कर नहीं देता है, पर साथ ही इसमें हमारा कुछ लगता भी नहीं है, यदि इसके कारण बढ़ी हुई विदेशी नीतिके भारका ध्यान न किया जाय। इसके कारण हमारी घराऊ राजनीतिपर भी प्रभाव नहीं पड़ता है। पर यह सब होते हुए भी हमने कसकर पञ्जेमें पकड़ा है जो ढीला नहीं होता बल्कि दिन दिन कड़ा होता जाता है। हिन्दुस्थान और इङ्गलैंडका सम्बन्ध चाहे जितना अस्वाभाविक और हानिकारक प्रत्यक्ष रूपसे जान पड़े, पर संसारकी आधुनिक अवस्थामें जो बड़े बड़े साम्राज्य स्थापित करनेके उपयुक्त है यह सम्बन्ध दिन दिन घनिष्ठ हो रहा है। इसलिये इस सम्बन्धकी बात अङ्गरेजी

इतिहासका एक महत्वपूर्ण परिच्छेद है। कितने इसपर निर्मूल गर्व करते हैं और कितने जिन्होंने कुछ डूबकर देखा है यह निराशा प्रकट करते हैं कि हमारे सब प्रयत्नोंके बाद भी यह स्थायी नहीं हो सकेगा। पर ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है यह प्रकट होता जाता है कि हम ईश्वरके हाथ हैं जो सारी राजनीतिज्ञताके परे है और यह तानाबाना जो बिना सोचे समझे किया गया है सभ्यताकी स्थायी कृति होनेकी सम्भावना रखता है। और यह भारतके सम्बन्धमें इङ्गलैंडकी उस सफलताकी, जो सबसे आश्चर्यजनक मालूम होती है, एक दिन सबसे महान अवस्था हो सकती है।

यहां एक बार पुनः हमारी दृष्टि वर्तमानको छोड़ अतीतकी ओर जाती है और हम इसका पता लगाना चाहते हैं कि हमने ऐसा काम करना क्यों सोचा? हमने ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार किया है कि किस शक्तिसे हमने हिन्दुस्थानियोंको अपना शासन माननेके लिये मजबूर किया। पर यह प्रश्न इससे भिन्न है। वह प्रश्न था, यह कैसे हुआ? यह प्रश्न है, यह क्यों हुआ? हमने देखा है कि बिना किसी अद्भुत शक्ति वा योग्यताके हम ऐसा महान साम्राज्य स्थापित कर सके। पर किस प्रेरणासे हमने ऐसा किया? कितने हो महान और वीर पुरुषोंने इस साम्राज्यको खड़ा करनेमें अपनेको बरबाद कर दिया है। उन्होंने ऐसा क्यों किया? पर यदि उन्होंने वही किया जिसे करनेको उन्हें आज्ञा मिली थी तो आज्ञा

देनेवालोंकी भावना क्या थी? यदि कम्पनीने ऐसा किया तो उसे हिन्दुस्थानपर अधिकार जमानेकी इच्छा क्यों हुई? इससे उसे क्या लाभ था? यदि ब्रिटिश सरकारने ऐसा किया तो उसका उद्देश क्या था? ऐसा काम करनेकी क्या सफाई वह पार्लमेंटको देसकी होगी? सम्भव है कभी कभी हमें बहुत लड़ाकू बनना पड़ा हो, पर हमारी सारी लड़ाइयोंका स्वरूप आत्मरक्षाकी लड़ाईका ही था। केवल विजयके लिये विजय करनेकी बात अङ्गरेज जातिको कभी पसन्द नहीं थी। तब हमने इसमें अपना क्या स्वार्थ सोचा?

निश्चय ही ब्रिटिश सरकारको इससे कोई लाभ नहीं हुआ। भारतविजयके व्ययके कारण ब्रिटिश सरकारका व्यय बढ़ा नहीं है, पर साथ ही हिन्दुस्थानसे कोई कर भी नहीं मिला है जिसके कारण उसका व्ययबोझ हलका हुआ हो। यदि पुरानी रीतिसे हम दोषीका पता लगाना चाहें और पूछें कि इससे लाभ किसको हुआ है? तो उत्तर यही होना चाहिये कि ब्रिटिश व्यापारको इससे लाभ पहुंचा है। हमें एक विदेशीसे व्यापार करनेका अवसर मिला है और आगे चलकर यह व्यापार खूब ही बढ़ा है। पर यह व्यापार तभीतक सुरक्षित है जबतक हिन्दुस्थान हमारे कब्जेमें है। इस प्रकार यह स्मरण करके कि विदेशी सरकारें सुरक्षित व्यापार नीति त्यागनेमें कैसी जिद्द रखती हैं, यह हमारे लिये एक खासा लाभ है। तब क्या यही

ठीक है कि बराबर हमारा उद्देश यह व्यापार ही रहा है ?

यह धारणा प्रत्यक्ष रूपसे युक्तिसंगत जान पड़ती है और इससे इसकी और भी पुष्टि हो जाती है कि व्यापारसे ही हमने आरम्भ किया। पहले पहल अपने व्यापारकी रक्षाके लिये ही हमने अस्त्र धारण किया। हिन्दुस्थानकी हमारी लड़ाइयां उसी समय फ्रांसके साथ होनेवाली अन्य औपनिवेशिक लड़ाइयोंके समान थीं। इनका कारण वही था जो अन्य लड़ाइयोंका अर्थात १५ वीं शताब्दीमें जिन देशोंका पता लगा था उनकी सम्पत्तिके लिये पाश्चात्य राष्ट्रोंकी पारस्परिक स्पर्द्धा। जिस प्रकार हिन्दुस्थानमें उसी प्रकार अमेरिकामें हमारे व्यापारिक अड्डे थे। दोनों जगह हमें फ्रांसीसियोंके साथ मुकाबला करना था। अपने अपने व्यापारिक अड्डेसे अङ्गरेज और फ्रांसीसी व्यापारी एक दूसरेपर चोट कर रहे थे। अमेरिकामें हमारे न्यू इङ्गलैण्ड और वर्जिनियाका उनके अकाड़ी और कनाडासे तथा हिन्दुस्थानमें हमारे मद्रास, कलकत्ता और बम्बई उनके पांडीचेरी, चन्दननगर और माहीसे युद्ध था।

हिन्दुस्थान और अमेरिका दोनों जगहोंमें अन्तिम घड़ी एक ही बार १७४० और १७६० के बीच उपस्थित हो गयी और दोनों राष्ट्र अपना अपना प्रभुत्व जमानेके लिये लड़ने लगे। दोनों ही जगह अङ्गरेज विजयी हुए। हिन्दुस्थानमें फ्रांसीसियोंपर विजय पानेके बाद हमने विश्राम नहीं लिया, बल्कि हिन्दु-

स्थानिओंपर साम्राज्य स्थापित करना आरम्भ कर दिया। यह घटना अन्य घटनाओंके साथ मिलकर हमें इसी परिणामपर पहुंचनेमें सहायता करती है कि आरम्भसे अन्ततक हमारे भारतीय साम्राज्यकी स्थापनाका मूलभूत भाव व्यापार था। हम सोच सकते हैं कि हमने समुद्रतःपर अपनी व्यापारिक कोठियां बनायीं और इनकी रक्षा फ्रांसीसियों तथा देशी शक्तियोंसे की। तब हमारे दिलमें देशके भीतर अपना व्यापार बढ़ानेका हौसला बढ़ा। इसके बाद मैसूर, मरहठासङ्घ आदिसे हमारा सामना हुआ जो हमारे साथ व्यापार सम्बन्ध करनेके अनिच्छुक थे। पर अपनी लालचकी प्रखरतासे हमने अस्त्र ग्रहण किया। हमारी सेनाएं उनपर टूट पड़ीं, उनके चुंगीघरोंको तोड़ दिया और उनके देशमें अङ्गरेजी माल पाट दिया गया। इस प्रकार धीरे धीरे हमने अपना व्यापार बढ़ाया जो पहले बहुत अल्प था और अन्तमें हमने सभी देशी शासकोंको नष्ट कर दिया और जब महान मुगल, मैसूरके सुलतान, महाराष्ट्रके पेशवा, अवधके नबाब, सिक्खोंके खालसा महाराज कोई नहीं रहे तो सारा प्रतिबन्ध दूर हो गया और हमारा व्यापार खूब बढ़ गया।

पर जरा गौरसे देखनेपर मालूम होगा कि ऐसी धारणाका समर्थन वस्तुस्थितिसे नहीं होता। यह सत्य है कि व्यापारसे ही इस साम्राज्यका आरम्भ हुआ और इधर हालमें यह व्यापार बहुत बढ़ गया है। पर ऐतिहासिक घटनाओंका मार्ग सीधी रेखाकी तरह नहीं होता कि जहां दो विंदु

मिल गये इसकी समूची गतिका पता लग गया। यदि यह बात सत्य होती कि ब्रिटिश व्यापार मार्गकी सारी बाधाओंको दूर करनेपर तुला हुआ था तो इसके लिये हिन्दुस्थानमें लड़ाई नहीं लड़नी होती। ब्रिटिश व्यापारके मार्गमें बाधा हिन्दुस्थानियोंके कारण नहीं था, बल्कि स्वयं कम्पनीके कारण था। इसलिये व्यापारकी उन्नतिके समय और विजयके समयका कोई सामञ्जस्य नहीं है।

सारी विजयके बाद भी १८१३ तक हमारा व्यापार बहुत थोड़ा था और १८३० के बाद यह बड़ी तेजीके साथ बढ़ने लगा। इन तारीखोंसे व्यापारकी उन्नतिका वास्तविक कारण मालूम होता है। ये तारीखें पार्लमेंटके उन ऐक्टोंकी तारीखें हैं जिनके द्वारा कम्पनीके हाथसे व्यापारका इजारा ले लिया गया। इस प्रकार यह मालूम हो जाता है कि यद्यपि हिन्दुस्थानकी विजय कम्पनीने की, पर व्यापार उस कम्पनीके कारण नहीं बल्कि उसे नष्ट करनेपर बढ़ा। हिन्दुस्थानको एक चार्टर्ड कम्पनीने अधीन किया, पर हमारे हिन्दुस्थानी व्यापारकी महान उन्नति तबतक न हुई जबतक यह कम्पनी नष्ट नहीं हुई।

ऊपरकी बात स्पष्ट करनेके उद्देशसे ईस्ट इण्डिया कम्पनीका मोटा इतिहास देना यहां ठीक जंचता है। महारानी एलिजाबेथके शासनके अन्तिमकालमें याने १६०० ईस्वीमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी कायम की गयी। यह ध्यान देने योग्य

बात है कि यह कम्पनी इसी समय बनी इसके पूर्व्व या पश्चात् नहीं। इङ्गलैण्डने अपना आधुनिक जहाजी काल स्पैनिश अरमडाके समयसे आरम्भ किया (१)। इसके बाद ही इसके समुद्री वीरोंकी पहली पीढ़ी तैयार हुई और इसी समय अमेरिकामें उपनिवेश बसानेका प्रयत्न किया गया। यदि यह बात सत्य है तो हिन्दुस्थानमें भी हमारी पहली व्यापारिक कोठी इसी समय बननी चाहिये थी। हम इसे पाते भी इसी समय हैं। क्योंकि अरमडाकी हारके ठीक बारह वर्ष बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी खड़ी की गयी।

---

(१) १५ वीं शताब्दीमें यूरोपीय राष्ट्रोंने नये नये देशोंका पता लगाया। पोर्तगीज और स्पेन इसमें आगे थे। इस समय स्पेन यूरोपका सर्व्वशक्तिशाली राष्ट्र था। अङ्गरेज भी पीछेसे देखादेखी नये देशोंसे लाभ सोचकर उनकी खोजमें निकले। इसी प्रक्रम जहांतहां स्पेनके नाविकोंसे इनकी मुठभेड़ हो गयी। इससे रुष्ट हो स्पेनके राजा फिलिफने १२० जहाजोंका एक बेड़ा बनाया जिसका नाम रखा "अजेय" अरमडा, १५८८ में उसने इङ्गलैंडपर चढ़ाई करनेके लिये भेजा। इङ्गलैंडके पास ऐसी जहाजी शक्ति नहीं थी, छोटे छोटे जहाज थे। इनसे अङ्गरेजोंने इनका मुकाबला किया। उस समय समुद्री तूफान आ गया जिससे अरमडा तितरबितर हो गया। अङ्गरेज जीत गये और स्पेन हार गया। इसके बाद अङ्गरेजोंकी प्रसिद्धि हो गयी और उनकी नाविक शक्ति खूब बढ़ी।

कम्पनी व्यापारके ही लिये बनी थी और १४८ वर्ष तक यह व्यापारमें ही लगी रही। इस बीच कई महत्वपूर्ण घटनाएं हुईं, पर यहां उनका उल्लेख करनेकी आवश्यकता नहीं है। दक्षिणात्यमें सन् १७४८ में कुछ ऐसी गड़बड़ मची कि कम्पनीको शासन कार्य्यमें हस्तक्षेप करना पड़ा और युद्धमें भाग लेना पड़ा। इसके बाद इसका दूसरा काल आरम्भ होता है जो बड़े ही महत्वका है। यह काल ११० वर्षका है और १८५८ में कम्पनीके नाशके साथ इसका अन्त होता है। इसी दूसरे कालसे हमारा यहां सम्बन्ध है। स्पष्ट समझनेके लिये हम इसकी श्रेणी करेंगे।

संयोगसे इस कालकी घटनाओंमें एक ऐसा सिलसिला है जो साधारणतः इतिहासमें नहीं मिलता। कम्पनीको पार्लमेंटमें अपना चार्टर बदलवाना पड़ता है। इसलिये यह स्वाभाविक ही था कि प्रत्येक नया चार्टर पार्लमेंट निश्चित शर्तपर दे और उस समय कम्पनीकी अवस्था जान ले। इस प्रकार कम्पनीके कार्य्यमें परिवर्तन होना जरूरी था और यह परिवर्तन बराबर एक निश्चित अवधिके बाद होता था। यह अवधि बीस बीस वर्षकी थी और इसका आरम्भ लार्ड नार्थके रेगुलेटिंग ऐकृसे याने १७७३ से हुआ। यदि हम इसे स्मरण रखें तो हमें चार और तारीख स्मरण रखने पड़ेंगे जो कम्पनीके इतिहासमें बड़े महत्वके हैं। ये तारीख हैं १७९३, १८१३, १८३३ और १८५३।

इन पांचों सनोंसे कम्पनीके इतिहासका ढांचा खड़ा किया जा सकता है। इनमेंसे पहला सन् सबसे महत्वका है। यदि १७५८ उस आंदोलनका आरम्भ सूचित करता है जिसके कारण ब्रिटिश भारतकी सृष्टि हुई तो १७७३ स्वयं इस सृष्टिका समय है। इसी वर्षसे गवर्नर जेनरलोंका क्रम आरम्भ हुआ। यद्यपि वे उस समय हिन्दुस्थानके नहीं बङ्गालके गवर्नर जेनरल कहे जाते थे। इसी समय कलकत्तेके सुप्रीम कोर्टकी स्थापना हुई। जिस कारण हमारे भारतीय साम्राज्यपर सङ्कटकी आशङ्का थी उसकी जड़ इसी वर्ष काट दी गयी। कम्पनीके कार्य्योंमें कम्पनीके मालिकोंका जो अधिकार था उसे उठा फैले हुए अनाचार और व्यभिचार नष्ट कर दिये गये।

१७९३ में जब दुबारे चार्टर दिया गया वह समय इतना प्रसिद्ध नहीं है यद्यपि उस समय जो वादविवाद हुए वे बड़े ही रोचक हैं। इससे हमें ऐंग्लो इण्डियन जीवनकी उस स्थितिका पता लगता है जब हिन्दुस्थानमें जानेवाले अङ्गरेज ब्राह्मणवत हो गये थे। हिन्दुस्थानको उन्होंने दुर्गम स्वर्ग बना रखा था जिसमें किसी यूरोपियन और विशेषकर ईसाई धर्म्म-प्रचारकोंका प्रवेश निषिद्ध था। पर इसके सिवा यह बंगालके स्थायी बन्दोबस्तका भी दिन है। यह घटना इतिहासमें एक चिरस्मरणीय घटना है।

१८३३ में कम्पनीका इजारा उठा दिया गया और कम्पनीका अस्तित्व प्रायः उसी समयसे नष्ट हो गया। इसके बादसे यह

एक ऐसी संस्था हो गयी जिसके कारण इङ्गलैंडद्वारा हिन्दुस्थानके शासनमें सुविधा पहुंचने लगी। इसी समय हिन्दुस्थानके सम्बन्धमें शासन व्यवस्था शृंखलावद्ध करनेका कार्य्य आरम्भ हुआ।

अन्तको १८५३ में प्रतियोगी परीक्षाके द्वारा नौकरियोंमें भर्ती करनेकी प्रथा चली। इस प्रकार १७८३ में जिस प्रश्नपर वड़ी हलचल मची थी और जिसके कारण राजनीतिज्ञोंको आशंका थी, वह प्रश्न हल हो गया।

पर यहां एक वार हमें यह चितावनी मिलती है कि इतिहासकी एक निर्धारित गति नहीं रह सकती। १८५७ के गदरसे इस प्रकारकी अवधि समाप्त हो गयी और १८७३का वर्ष जो रेगुलेटिङ्ग ऐक्टके सौ वर्ष वाद पड़ता है ब्रिटिश भारतके इतिहासमें कोई महत्वका वर्ष नहीं है।

इससे यह मालूम होता है कि १८१३ में कम्पनीका व्यापारिक इजारा घटाया गया और १८३३ में यह विलकुल उठा दिया गया। मकूलाने हमारे भारतीय व्यापारको वहुत ही अल्प वतलाया है इसका कारण यही है कि उसके सामने १८११तकके ही आंकड़े थे। पर जव व्यापारकी खूव वृद्धि हुई है वह समय सन् १८१३ और विशेषकर १८३३ के वादका है। दूसरे शब्दोंमें हिन्दुस्थानका व्यापार जबतक उनके हाथमें था जिनका उद्देश केवल व्यापार था, तवतक तो यह व्यापार प्रायः नहींके वरावर था। पर जव हिन्दुस्थानका शासन

हिन्दुस्थानके लिये होने लगा तब व्यापार खूब ही बढ़ा। पहले यह बात कुछ विचित्र जान पड़ेगी। पर हमें स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दुस्थानके शासनमें व्यापारबुद्धिका त्याग करनेके समय हमने व्यापार सम्बन्धी इजारा भी नष्ट किया था। इसलिये एक कम्पनीके हाथमें व्यापार रहनेसे इसकी गति मन्द थी और जब यह प्रतिबन्ध उठा दिया गया तो इसका खूब तीव्र होना स्वाभाविक था। दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि व्यापारवृद्धि और राज्यवृद्धिमें कोई सम्बन्ध नहीं है।

चार बड़े शासक हुए हैं जिन्हें साम्राज्य बढ़ानेवालेकी उपाधि दी जा सकती है। लार्ड क्लाइव, लार्ड वेलसली, लार्ड हेस्टिंग्स और लार्ड डालहाउसी येही वे चार शासक हैं। सरसरी तौरपर यह कहा जा सकता है कि पहलेने कलकत्तेसे लेकर मद्रासतक पूर्वी समुद्र तटपर ब्रिटिश राज्य स्थापित किया, दूसरे और तीसरेने मरहट्ठाशक्ति नष्ट की और देशके मध्य भाग तथा पश्चिमी प्रायद्वीपमें हमारा शासन स्थापित किया। चौथेने इन सबको सुरक्षित किया, इसके सिवा पश्चिमोत्तर प्रदेशको ब्रिटिश राज्यमें मिलाया और इन्दु नदीतक ब्रिटिश सीमा स्थापित की। इन विजयोंमें बहुत फासला है इसलिये वे भिन्न भिन्न श्रेणीमें आते हैं। १७४८ और १७६५ के बीच एक विजय अवधि थी। इसका सम्बन्ध हम क्लाइवसे जोड़ सकते हैं। दूसरी अवधि १७९८ से आरम्भ

हुई और १८२० तक रही। इस अवधिके साथ लार्ड वेलसली और लार्ड हेस्टिंग्सका नाम आता है। तीसरी अवधि १८३६ और १८५० के बीच है। इसका पूर्वार्द्ध तो हमारे लिये अच्छा नहीं था, पर उत्तरार्द्धमें हमें विजय प्राप्त हुई जिसका श्रेय लार्ड डालहाउसीको मिलना चाहिये।

इस देशविजय और व्यापारवृद्धिमें कोई सम्बन्ध नहीं था। १८११ तक व्यापार बहुत ही अल्प था, यद्यपि इसके बहुत थोड़े समय बाद ही वेलसलीने कई प्रदेशोंको ब्रिटिश राज्यमें मिलाया। १८३० में व्यापार खूब बढ़ा, पर यह किसी भी लड़ाई या विजयका समय नहीं है। गदरके बाद ब्रिटिश राज्यमें देशके अन्य भागोंका मिलाना बन्द हो गया, पर इसके २५ वर्ष बाद व्यापारकी बहुत बढ़ती हुई।

इस प्रकार जो यह कहा जाता है, और जैसा कि सरसरी नजरसे इतिहास देखनेपर मालूम होता है, कि व्यापारकी वृद्धि बिना अन्य कुछ सोचे विचारे करनेकी धुनका ही परिणाम यह साम्राज्य है, वह वैसा ही गलत है जैसा यह कहना कि सैनिक अत्याचार और आक्रमणसे यह स्वराज्य कायम हुआ है।

साम्राज्य स्थापनके कार्य्यका श्रीगणेश अपनी व्यापारिक कोठियोंकी रक्षाके ही कार्य्यसे हुआ था। मद्रास प्रांत जिस प्रयत्नसे हमारे हाथ आया वह पहले फ्रांसीसियोंसे सेंटजार्ज और सेंटडेविडके किलेकी रक्षाके ही लिये किया गया था।

इसी प्रकार फोर्ट विलियमकी रक्षा और ब्लैकहोल (१) अत्याचारके दोषी बंगालके मुसलमान नवाब सिराजुद्दौलाको दण्ड देनेके प्रयत्नमें बङ्गाल प्रेसिडेंसीकी स्थापना हो गयी।

यहांतक भी कारण स्पष्ट है। पर इसके बाद जो काल आरम्भ हुआ, जिसे हम ब्रिटिश इण्डियाका अनाचार युग कह सकते हैं, उसमें हम केवल लूटके लोभसे आगे बढ़े, यह कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। बनारस, अवध और रुहेलखण्डमें वैरेनहेस्टिंग्सने जो बलप्रयोग किया उसका उद्देश एक मात्र रुपया ऐंठना और रुपयेके लिये फाटकेबाजी थी। यदि बादका इतिहास भी हमारा इसी प्रकारका होता है तो इसमें सन्देह नहीं कि हमारा यह साम्राज्य भी हेस-पिनियोला और पेरूमें स्पेनके राज्यकी तरह होता और इसका अस्तित्व बिलकुल स्वार्थ और लालचके आधारपर ही कहा जाता।

पर १७८५ में लार्ड कार्नवालिसके आगमनके बाद यह

---

(१) सिराजुद्दौलाको अङ्गरेज इतिहासकारोंने बड़ा ही बदनाम कर रखा है और उसकी कीर्तिपर जो सबसे बड़ी कालिमा लगायी जाती है वह "ब्लैकहोल" या "कालकोठरी"का हत्याकांड है। पर अब यह प्रमाणित हो गया है और कई अङ्गरेज लेखकोंने भी इसे मान लिया है कि इस हत्याकांडका सारा वृत्तान्त हालवेलने अपने मनसे गढ़लिया था और इसके सम्बन्धकी सारी बातें झूठी हैं।

अवस्था बदल गयी। कुछ तो अपने उच्च आचरणके बलने और कुछ सुधार चातुरीने, जिसका परिणाम कम्पनीके नौकरोंका चेतन बढ़ाना था, उनकी सारी बुराई धोडाली। उस समयसे सिविल सर्वेंटोंका सम्मान उनके नैतिक आचरणके कारण होता है। यदि प्रधान उद्देश आर्थिक लाभ ही होता तो इसका स्वाभाविक परिणाम यही होता कि कम्पनीकी आक्रमणकारी नीतिका अन्त इसके बाद हो जाता। क्योंकि इसके बाद न तो इसके नौकरोंको बेइमानीसे रुपया कमानेका मौका रहा और न कम्पनीको बदनीयतीसे लड़ाईमें शामिल होनेका अवसर। १७८४ में पिट द्वारा स्थापित द्वैध शासनके कारण ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलको भी इसे पापसङ्गी बनाना पड़ता। यह मान लिया जा सकता है कि अभिलाषा जनित अपराध ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल कर सकता है, पर यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि एक व्यापारिक कम्पनीके नीच अपराधमें यह शामिल होगा।

सत्य बात यह है कि पिटके इण्डियाबिलके बाद हिन्दुस्थानी मामलोंका अन्तिम प्रबन्ध कंपनीके हाथसे निकल गया। इसके बाद वह कार्य्य जिसका आरम्भ व्यापारके लिये हुआ था ऐसे लोगोंके हाथ चला गया जिनका व्यापारसे कोई सम्बन्ध नहीं था। इसके बादसे हिन्दुस्थानके प्रमुख मामलोंका प्रबन्ध दो अङ्गरेज राजनीतिज्ञोंके अधीन हो गया। एक बोर्ड-आफ कांट्रोल (नियन्त्रण-सङ्घ) के अध्यक्ष और दूसरा

गवर्नर जेनरल। और जबतक कंपनीका अस्तित्व रहा वोर्डके प्रेसिडेंटके अधिकारकी अपेक्षा गवर्नरका अधिकार ही प्रधान रहा। इसी कालमें अधिकांश विजय हुई। और यह निश्चित है कि इस कालमें हिन्दुस्थानके मामलोंमें व्यापारके प्रभावसे कार्य्य नहीं होता था।

१७६८ में लार्ड वेलसलीके आनेके बाद भारतीय नीतिमें एक नया युग आरम्भ हुआ। उसने ही पहले पहल हस्तक्षेप और अन्य राज्योंको ब्रिटिश राजमें मिलानेकी प्रथा चलायी। लार्ड हेस्टिंगसने, जिसने पहले इस नीतिका विरोध किया था गवर्नर जेनरल होनेपर इसका ही अनुसरण किया। इसके बाद कंपनीके अधीनस्थके अन्तिम गवर्नर जेनरल लार्ड डालहाउसीने इस नीतिका अनुसरण एक प्रकारके उन्मादसे प्रेरित होकर किया।

हिन्दुस्थान विजयमें यही ब्रिटिश नीति थी। इसका उद्देश व्यापारकी वृद्धि नहीं थी। कंपनीने इस नीतिका समर्थन नहीं किया, बल्कि इसका बिरोध किया। कंपनीने लार्ड वेलसली और लार्ड हेस्टिंगसको रोका, पर लार्ड डालहाउसीका जो उसने आश्चर्यजनक नीतिसे समर्थन किया उसका कारण यही है कि उस समयतक डाइरेक्टर्स कंपनीके प्रतिनिधि नहीं रह गये थे। इस नीतिका अनुसरण कभी कभी बहुत जुल्मके साथ किया गया। विशेषकर लार्ड डालहाउसीका स्थान इतिहासमें फ्रेडरिक महानकी तरह है। उसके

कार्य्योंको उसी प्रकार उचित नहीं बतलाया जा सकता जिस प्रकार फ्रेडरिक द्वारा सिलेसियापर कब्जा या पोलैण्डका बटना उचित नहीं कहा जा सकता। पर यदि ये कार्य्य जुल्म कहे जायं तो ये जुल्म महत्वाकांक्षाके कारण हैं और यह महत्वाकांक्षा बिलकुल स्वार्थपूर्ण नहीं कही जा सकती। न तो वह और न वैरेनहेस्टिंग्सके बाद कोई भी गवर्नर जेनरल निंद्य लूट और व्यभिचारजनित अत्याचारका दोषी ठहराया जा सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि इस साम्राज्यका आरंभ व्यापारके लिये हुआ और इसका एक प्रधान परिणाम व्यापार ही है, पर तो भी इसका निर्माण व्यापारियोंके द्वारा व्यापारके उद्देशसे नहीं हुआ है।





परिशिष्ट

(भारतेतर ब्रिटिश साम्राज्यका विस्तार)

ब्रिटिश साम्राज्यका क्षेत्रफल ११४६८००० वर्ग मील है और जनसंख्या प्रायः एकतालीस करोड़की है। यूरोपीय महायुद्धके बाद जर्म्मनीके अधीन देश और मेसोपटामिया आदि जो इसके अधिकार क्षेत्रमें आ गये हैं उसके कारण यह क्षेत्रफल और यह जनसंख्या और भी बढ़ गयी है। छोटेसे टापू इङ्गलैण्डका कोई सवा सौ वर्षोंमें इस प्रकार बढ़ना निःसन्देह एक आश्चर्य्यकी बात है और मनुष्य या जातिकी शक्ति और योग्यताका पता यदि उसकी सफलतासे लगता हो तो यह मानना पड़ेगा कि साम्राज्य स्थापित करनेकी अद्भुत् शक्ति अङ्गरेज जातिमें है। यह शक्ति नैतिक है या कूटनीतिक, स्वार्थमूलक या परमार्थमूलक यह एक बिलकुल दूसरी बात है। पर उसमें शक्ति है, यह उसकी सफलता देखकर कोई भी कह सकता है। यहां हम इसका विशेष विचार नहीं करेंगे और न यहां इसके लिये यथेष्ट स्थान है। पर इस छोटेसे निबन्धमें जिस प्रकार ब्रिटिशराज्यका विस्तार मालूम होगा उसी प्रकार धीरेधीरे इस शक्तिका स्वरूप भी मालूम होता जायगा।

ब्रिटिश साम्राज्यका विस्तार आज इतना हो गया है। पर आजसे अनुमान दो हजार वर्ष पहले न तो ग्रेटब्रिटेन था न इङ्गलैण्ड और न अंगरेज जाति। फिर ब्रिटिशसाम्राज्यकी तो बात ही क्या है। उस समय इङ्गलैण्डका नाम ब्रिटेन था (ग्रेटब्रिटेन नहीं) और वहांके रहनेवाले ब्रिटन कहलाते थे। वे जङ्गली अवस्थामें ही थे और देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये नरबलि दिया करते थे। जैसा आज है वैसा ही उस समय भी यह द्वीप चारो ओर समुद्रसे घिरा हुआ था। फिर भी ब्रिटन लोग सुरक्षित नहीं रह सके। ईसाके ५५ वर्ष पहले रोमके प्रधान सेनापति और शास्ता जूलियस सीजरने ब्रिटेनपर चढ़ाई कर उन्हें जीत लिया। इसके बाद लगभग साढ़े चार सौ वर्षतक ब्रिटेनमें रोमवालोंने राज किया। उनके कारण ब्रिटन लोग कुछ सभ्य हुए। पर रोम सरकार नवयुवक ब्रिटनोंको पकड़कर रोमके लिये लड़नेको बाहर ले जाती थी और जो लोग ब्रिटेनमें रह जाते थे उन्हें शस्त्र रखनेकी आज्ञा नहीं थी। इस प्रकार सारी जाति आत्मरक्षाके लिये उसी प्रकार असहाय हो गयी प्रायः जिस प्रकार आज हिन्दुस्थानी हो गये हैं।

जिस समय ब्रिटन लोगोंकी यह क्लीवावस्था हो गयी थी उसी समय रोमपर उत्तरीय यूरोपके असभ्य जातियोंने आक्रमण किया। इस आपत्तिका सामना करनेके लिये रोम सरकारको अपनी सारी सेना इकट्ठी करनी पड़ी। इसलिये ब्रिटिशजाति

"त्राहि माम्, त्राहि माम्" चिल्लाती रह गयी, पर रोमवाले उसे छोड़कर चले गये। ज्यों ही उन्होंने पीठ फेरी कि पिक्ट और स्काट जातियोंने ब्रिटिश जातिपर आक्रमण कर दिया। उनके घर और खेत खलिहानोंको जला दिया और उन्हें पकड़ पकड़ कर अपने देशमें ले जा कर गुलाम बनाया। ब्रिटिश जातिने अपने दयालु रोमन प्रभुओंका स्मरण कर खूब आंसू बहाया और उनके पास अपना दुखड़ा लिख भेजा। रोमवालोंने दया कर एक जहाजी बेड़ा भेज दिया जिसके डरसे पिक्ट और स्काट भाग गये। पर बकरेकी मा कितने दिनोंतक खैर मना सकती है। फिर उन्हें छोड़कर रोमवाले चले गये। फिर पिक्ट और स्काट जातियोंने पहलेसे अधिक क्रुद्ध होकर आक्रमण किया। ब्रिटिश जातिने रोम सरकारके पास पत्र भेजा। पत्रका शीर्षक था "ब्रिटिश जातिकी मृत्यु चीत्कार"। इसमें लिखा था असभ्य पिक्ट और स्काट हमें समुद्रतक हटा लाते हैं और समुद्र हमें उनकी तलवारोंपर फेंक देता है, इन दोनोंके बीच हम रहने नहीं पाते क्योंकि एक हमें कतल करता है और दूसरा हमें डूबो देता है।" पर इस चीत्कारका कोई प्रभाव रोमसरकार पर नहीं पड़ा। पीर आपको मंदा दरगाह कहांसे लगावे। रोम स्वयं सङ्कटमें पड़ा था, वह ब्रिटेनकी रक्षा क्या करता।

ब्रिटेन लोगोंके उस समयके राजाका नाम कानस्टान्स था। राज्यके एक प्रधान व्यक्ति वार्टिगनेने पिक्ट लोगोंके साथ

षड़यन्त्र रच उसे मरवा डाला और उनकी सहायतासे आप राजा बन गया। राजा बननेपर जनतामें अपनी नेकनीयतो स्थापित करनेके लिये वह प्रकटरूपमें राजाके लिये आंसू बहाया और खैरखाही दिखलानेके लिये अपनी सेनाको आज्ञा दी कि वह पिक्ट लोगोंको कत्ल करे। इसपर पिक्ट क्रुद्ध हो गये और सारे देशको खूब लूटा और जलाया। उस समय सैक्सन जातिके लोग इङ्गलिश चैनेलसे आते जाते थे। ये समुद्री डाकू थे। वार्टिगनेने पिक्ट लोगोंके साथ लड़नेके लिये उन्हें बुलाया। उनके आनेपर पिक्ट हार गये। इससे वार्टिगने बड़ा प्रसन्न हुआ. उन्हें थानेटका द्वीप देदिया और बहुतसे सैक्सनोंको बुलाकर केंटमें बसाया। पर शीघ्र ही मालूम हो गया कि वार्टिगनेने आस्तीनमें सांप पाला है। क्योंकि ये पिक्टोंसे भी खूंखार और जालिम निकले। प्राचीन ब्रिटिश जातिका वर्तमान ब्रिटिश जातिका नहीं क्योंकि ये इन्हीं सैक्सनों और उनके स्वदेशीय ऐंगल लोगोंके वंशज हैं) एक गाना है जिसका अर्थ है—"वह दिन बड़ा ही अशुभ था जब हमने सैक्सनोंसे दोस्ती की। ईश्वर दण्ड दे वार्टिगने और उसके कायर सलाहकारोंको"।

सैक्सन लोगोंको मालूम हो गया कि ब्रिटिश जाति और उसका राजा कैसा निर्बल है। फिर क्या था, उन्होंने अपनी सारी जातिको बुला लिया। सबोंने मिलकर धीरे धीरे सारे ब्रिटेनको जीत लिया। वार्टिगने और उसकी कितनी ही प्रजा तो वेल्सके जङ्गलोंमें भाग गयी और कितनी चैनेल पाड़

कर गाल (फ्रान्स) में जा बसी। वेल्समें आज भी उन प्राचीन ब्रिटनोंके वंशज हैं जो अपनी पुरानी भाषा भी आजतक बोलते हैं। पर सेक्सन लोगोंमें सारे ब्रिटेनमें (ब्रिटेनका अर्थ है स्काटलैंड, आयरलेण्ड और वेल्सको छोड़कर वर्त्तमान ग्रेट ब्रिटेनका भाग) एक शासन स्थापित करनेकी क्षमता ईसाकी पांचवीं शताब्दीके बादतक भी नहीं थी इसलिये उन्होंने अलग अलग सात शासन स्थापित किया। इन सातोंमें बराबर लड़ाई होती रही और कुछ दिन बाद सातके स्थनमें केवल तीन राज्य रह गये। अन्तको वेसेक्सके शासकने सन् ८०० में युद्धद्वारा इन तीनोंको मिलाकर एक कर दिया। यहांपर यह जान लेना चाहिये कि इस देशका नाम जो आज इङ्गलैण्ड है वह सैक्सनोंके पहले नहीं था। सैक्सन जातिकी एक शाखा आंगल जाति थी उसीके नामसे इस देशका नाम आंगललैण्ड या इङ्गलैण्ड पड़ा।

सारे इङ्गलैण्डका प्रथम राजा एगवर्ट (८००—८३६) था। इसीके समयमें डेन्श लोगोंका आक्रमण इङ्गलैण्डपर आरम्भ हुआ। इसके बाद लगातार दो सौ वर्षतक इङ्गलैण्डको इनके कारण बड़ा कष्ट पहुंचा। वे लोगोंको लूटते, मारते और गिरजा आदि जला देते थे। इस दो सौ वर्षके बीच इङ्गलिश राजाओंने डेन्शोंको कई बार दबाया भी और अलफ्रेड महानके समय वे पूर्ण रूपसे पराजित भी हो गये, पर वे नष्ट कभी नहीं हुए और बराबर किसी न किसी रूपमें इङ्गलैण्डवालोंको कष्ट पहुंचाते

रहे। अन्तको सन् १००२में राजा एथलरडने इङ्गलैण्डमें रहनेवाले प्रायः सभी डेन्सोंको मरवा डाला। इसका बदला लेनेके लिये डेनमार्कके राजा स्वीनने अपने पुत्र कन्यूटके साथ इङ्गलैण्डपर चढ़ाई की और सारे देशको लूटा मारा। एथलरडके पुत्र एडमण्डने डेन्सोंको भगानेका प्रयत्न किया, पर फल कुछ न हुआ और उसके मरनेपर अङ्गरेज जातिने विदेशी कन्यूटको स्वेच्छासे राजा चुन लिया। कैन्यूट अच्छा शासक था और इसने इङ्गलैण्डकी जनताकी सुखशान्तिके लिये कितने ही काम किये। कन्यूटका नाम उस घटनाके कारण बहुत प्रसिद्ध है जो खुसामदी मुसाहबों द्वारा राजाकी झूठी प्रशंसाका उदाहरण है। कन्यूटके मुसाहबोंने खुशामद दिखलानेके लिये कहा कि "महाराज! आप तो इतने शक्तिशाली हैं कि समुद्रकी लहरें भी आपकी आज्ञा नहीं उठा सकतीं।" कन्यूट मूर्ख शासक नहीं था। इसलिये इन्हें शिक्षा देनेके लिये साउथैम्पटनमें समुद्रतटपर एक कुर्सी रखवा कर बैठा और जोरसे चिल्लाकर कहा "लहरो तुम पीछे हट जाओ जिसमें मैं भींगूं नहीं।" पर लहरोंने बढ़कर उसे भिंगाकर यह बतला दिया कि ईश्वरके सिवा अन्य दूसरे सभी की, चाहे वह राजा ही क्यों न हो, शक्ति सीमाबद्ध है।

कन्यूटके वंशके राजाओंने अधिक दिनतक शासन नहीं किया। उसके मरनेके बाद उसके दो बेटोंने लगातार शासन किया। इसके द्वितीय पुत्र हार्डी कन्यूटकी मृत्युके बाद उसकी

कोई सन्तान नहीं थी। इसलिये एडवर्ड आयरन साइडका भाई एडवर्ड राजा बनाया गया। इस प्रकार एक बार फिर सैक्सन राजाओंका वंश सिंहासनारूढ़ हुआ। पर अधिक समयतक वे राज न कर सके। एडवर्डके मरनेपर जातीय सभा ब्रिटेनने हेरल्डको राजा चुना। पर स्वयं उसके भाईने उसके विरोधमें बगावत की और नारवेके राजा हरडाडाको इङ्गलैण्डपर चढ़ा लाया। हेरल्डने इन दोनोंका मुकाबला किया और स्टैम्फोर्डब्रिजकी लड़ाईमें दोनों मारे गये। पर हेरल्डको इस लड़ाईके बाद विश्रामका अवकाश भी नहीं मिला क्योंकि नारमण्डीके ड्यूक विलियमने इङ्गलैण्डपर चढ़ाई कर दी। हेरल्डने उसका सामना किया और हेस्टिंग्स नामक स्थानमें दोनों सेनाओंका मुकावला हुआ। दिन भरकी लड़ाईके बाद हेरल्ड मारा गया। उसके मरनेके बाद अङ्गरेजी सेना भाग गयी। इसी लड़ाईमें हेरल्डके दो भाई मारे गये और साथ ही इङ्गलैण्डके इतने सामन्त सरदार मारे गये कि प्रतिष्ठित सैक्सन परिवारोंका प्रायः नाश हो गया। इस प्रकार ब्रिटेनके विदेशी राजा सैक्सन नष्ट हुए और उनकी जगह विदेशी नारमन लोगोंके वंशका शासन प्रारम्भ हुआ। विलियम बड़ा पराक्रमी था। इङ्गलैण्डके इतिहासमें उसे "विजेता"की उपाधि दी गयी है। उसने अङ्गरेजोंसे सारी जमीन छीन ली और अपने नारमन सरदारोंमें बांट दिया। वर्तमान इङ्गलैण्डके लार्ड घरानोंके लोग प्रायः नहीं नारमनोंके वंशज हैं। नारमनोंके

बाद यद्यपि इङ्गलैंडमें आन्तरिक युद्ध रहा, स्काटलैंड, फ्रान्स आदिसे भी लड़ाई हुई, तथापि इसके बाद कोई विदेशी आक्रमण इस प्रकारका नहीं हुआ जैसा नारमनोंका हुआ था। यों तो इङ्गलैंडके वर्तमान राजा पाँचवें जार्ज जिस वंशके हैं वह हैनोवेरियन वंश भी विदेशी है।

नारमण्डीके विलियमके बाद इङ्गलैंडकी प्रजा और राजामें स्वत्वोंके लिये लड़ाई रही। जो राजा बलवान और स्वेच्छाचारी था उसने जनताकी उपेक्षा की, पार्लमेण्टकी अवहेलना की और जो राजा निर्बल हुआ उससे जनताने अधिकाधिक स्वत्व छीननेका यत्न किया। इङ्गलैंडके राजा और प्रजाके बीच प्रजाका पक्ष राजा जोनके समयमें पहले पहल कुछ ऊंचा हुआ जब सन् १२१५ में राजाको मैगनाकार्टा स्वीकार करना पड़ा। इसकी कुछ प्रधान शर्तें इस प्रकार हैं;—(१) पार्लमेण्टके सिवा दूसरा कोई कर नहीं लगा सकता, (२) राजा न्याय नहीं बेंच सकता और सबके साथ उसे न्याय करना होगा, (३) सारे इङ्गलैंडमें एक प्रकारके पैमानोंका व्यवहार होगा, (४) सभी सौदागर देशमें स्वतन्त्रताके साथ घूम सकते हैं और क्रय विक्रय कर सकते हैं, (५) लन्दन और प्रत्येक शहर और बन्दरगाहको अपनी स्वतन्त्रता होगी और (६) राजके प्रत्येक व्यक्तिको जान, माल और व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका स्वत्व होगा जिसका अपहरण तभी हो सकता है जब वह अपराध करे और जूरीद्वारा अपराधी पाया जाय। इस प्रकार तेरहवीं शताब्दीके

प्रारम्भतक ब्रिटिश प्रजाको अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके लिये ही लड़ना था। इस मैगनाकार्टासे प्रजाके स्वत्वकी नींव जमी। पर इसके बाद कितने नालायक राजा हुए जो इन स्वत्वोंका अपहरण एक न एक उपायसे करते रहे। अन्तको प्रथम चार्ल्सके समयमें यह अत्याचार बहुत बढ़ गया जिसके कारण क्रामवेलके अधीन अंगरेजी प्रजाने क्रान्ति आरम्भ कर दी और १६४८ में प्रथम चार्ल्सको फाँसी दी गयी। इसके बाद इङ्गलैण्डमें राजाके स्थान प्रजाका शासन आरम्भ हुआ जिसका संरक्षक आलिवर क्रामवेल हुआ। क्रामवेलकी मृत्युके बाद रिचार्ड क्रामवेल उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसमें अपने पिताकी योग्यता नहीं थी इसलिये एक वर्षके भीतर ही सन १६५६ में उसने इस्तीफा दे दी। जनताके नेताओंमें इस प्रकारका शासन चलानेकी योग्यता नहीं थीं, इसलिये इङ्गलैण्डके सब श्रेणीके लोगोंने मिलकर दूसरे चार्ल्सको १६६० ईस्वीमें राजा बनाया। पर इसके बाद भी राजा और प्रजाका कलह समाप्त नहीं हुआ और द्वितीय जेम्सके समय सन १६८८ में एक और क्रान्ति हुई। जेम्स कैथलिक सम्प्रदायसे सहानुभूति रखता था और कैथोलिकोंपर जो प्रतिबन्ध रखे गये थे उसे उसने उठा दिया। इस कारण इङ्गलैण्डका मिशनरी दल और पार्लमेण्ट भी उसके विरुद्ध हो गया। अन्तको पार्लमेण्टने जेम्सके दामाद तीसरे विलियमको जो आरेंजका ड्यूक था बुला भेजा। वह एक भारी दल सेना लेकर पहुंचा। प्रायः

सारा इङ्गलैण्ड उसकी ओर हो गया और जेम्स फ्रान्स भाग गया। उसके बाद विलियम और उसकी स्त्री मेरीके हाथ इङ्गलैण्डका शासनभार दिया गया तथा इसी अवसरपर उनसे प्रजाके लिये अधिक स्वत्व भी प्राप्त किया गया। पर साधारण जनताको यह स्वत्व नहीं मिलता था, बल्कि देशके धनियोंका ही बल इन स्वत्वोंसे बढ़ता था। हैनोवेरियन राजाओंके समयतक यही अवस्था रही। चौथे जार्जके समय याने सन् १८२० ईस्वीसे साधारण जनताका बल कुछ बढ़ने लगा और इसी समयसे मर्य्यादित राजसत्ताके अधीन प्रजातन्त्रका युग आरम्भ हुआ जिसके कारण इङ्गलैण्डका राजा आज नाम मात्रका राजा है, वास्तविक शासन साधारण जनताके हाथमें है। पर यह युग बहुत पुराना नहीं है, उसका आरम्भ १८३२ में ही हुआ। इस प्रकार इङ्गलैण्डका यह प्रजातन्त्र शासन अभी सौ वर्षका भी पुराना नहीं हुआ।

यह तो ब्रिटेनका भीतरी विकाश है। अब मैं इसके बाहरी विकाश और विस्तारका उल्लेख करूंगा। एलिजाबेथके समयमें इङ्गलैण्डके विस्तारका सूत्रपात हुआ, ऐसा कहा जा सकता है। यद्यपि हमें यह मालूम है कि एलिजाबेथके शासनके अन्तिम दिनोंमें भी इङ्गलैण्डके बाहर इसके अधीन कोई देश नहीं था। महान ग्रेटब्रिटेनकी बात तो दूर रहे स्वयं ग्रेट-ब्रिटेनकी स्थापना नहीं हुई थी। स्कॉटलैंड और आयर-लेंड इङ्गलैंडसे अलग थे। एलिजाबेथकी मृत्यु १६०३ में हुई,

पर स्काटलैंड १७०७ में इङ्गलैंडके साथ मिलाया गया। इस प्रकार एलिजाबेथकी मृत्युके १०४ वर्ष बाद ग्रेटब्रिटेनकी स्थापना हुई और इसके भी करीब सौ वर्ष बाद अर्थात १८०० ई० में आयरलैंड इङ्गलैंडमें मिलाया गया। पर एलिजाबेथके करीब सौ वर्ष पहलेसे इङ्गलैंडके बाहर यूरोपमें एक अद्भुत् काण्ड हो रहा था, एक नया युग उपस्थित हो रहा था और एक नयी दुनिया बन रही थी। इङ्गलैंडको इसकी खबर नहीं थी और न इस परिवर्तनमें उसका कोई हाथ था। यद्यपि आगे चलकर इससे होनेवाले सारे लाभ और सारा यश उसे ही मिला। हिन्दुस्थानका पता पोर्तगीजोंने लगाया था, पर राज यहां आज अंगरेजोंका है। अमेरिकाका पता स्पेनवालोंने लगाया था, पर कनाडा आज ब्रिटिश साम्राज्यमें है। इसी प्रकार दक्षिण अफ्रिकाके डचोंके वंशज बोरोंके वहां रहते भी दक्षिण अफ्रिका ब्रिटिश साम्राज्यमें है। अंगरेज जातिके सम्बन्धमें हम एक बहुत विलक्षण बात पाते हैं जो प्रायः हर जगह लागू है। वह यह है कि जङ्गल काटकर खेत बनाता है दूसरा, जोतता है और बीज भी डालता है दूसरा, पर फसल काटनेके समय अंगरेज पहुंच जाते हैं। वे फसल भी काटकर ले जाते और आगेके लिये खेत भी उनके कब्जेमें आ जाता है। हम आगे देखेंगे कि आस्ट्रेलियाको छोड़कर प्रायः सभी नये देशोंमें ऐसा ही हुआ। नये देशोंका पता दूसरोंने लगाया, उन्हें लाभ दायक दूसरोंने ही बनाया। उस समयतक अंगरेज

जातिका पता नहीं था, पर जब इससे नफा उठानेका समय आया अंगरेज ठीक मौकेसे पहुंच गये और बाजी मार लो। जितने देशोंपर आज इङ्गलैण्डका साम्राज्य है उनमें आस्ट्रे-लियाको छोड़ सब दूसरोंके हाथसे इन्हें मिला है। लड़ाईकी हालत भी यही है। नैपोलियनके साथ सारा यूरोप मिलकर लड़ा और उसके कारण हानि भी उन्हीं देशोंकी विशेष हुई, पर वाटरलूका श्रेय अंगरेज जातिको ही मिला। इसी प्रकार जर्मन महायुद्धमें बेलजियम और फ्रांस जर्मनीके विरुद्ध लड़नेमें उजड़ गये, पर जर्मनीको परास्त करनेका श्रेय अंगरेजोंको ही विशेष रूपसे मिला। इसे अंगरेज जातिका भाग्य, इसकी चालाकी, कूटनीतिज्ञता और समय देखकर काम करनेकी योग्यता या सब एक साथ समझें। पर बात यही है जिसका प्रमाण आप खोजनेपर अंगरेजों द्वारा प्राप्त सभी सफलताओंमें पावेंगे। अस्तु, इस विषयको मैं यही छोड़ता हूं; हमें देखना यह है कि किस प्रकार १५ वीं शताब्दीके अन्तसे १६ वीं शताब्दीतक नये नये देशोंका पता यूरोपवालोंको लगा और किस प्रकार ये देश अंगरेजोंके हाथ आये।

यूरोपवालोंके लिये हिन्दुस्थान सदासे एक अद्भुत् सम्पत्ति-वाला देश रहा है और हिन्दुस्थान कहां है यह नहीं जानते रहनेपर भी वे बराबर इसका पता लगानेके लिये उत्सुक रहे हैं। प्राचीनकालमें भी हिन्दुस्थानका व्यापार बाहरी एशि-याई देशोंके द्वारा यूरोपसे भी था। अरबी सौदागर स्थलमार्गसे

हिन्दुस्थानसे कीमती सौदा ले जाते थे और यूरोपवालोंके हाथ बहुत महंगे दामपर बेचते थे। इसके बाद कुछ यूरोपियन व्यापारी भी इस स्थलमार्गसे हिन्दुस्थान और चीनके साथ व्यापार करने लगे। पर उस समयमें इस स्थलमार्गमें बड़ी कठिनाई थी। पर अन्तको पन्द्रहवीं शताब्दीके मध्यमें तुर्क जाति बड़ी प्रबल हो उठी और यूरोपतक इसने अपना झण्डा गाड़ दिया। व्यापारका स्थलमार्ग उसने यूरोपियनोंके लिये सदाके लिये बन्द कर दिया। इसलिये यूरोपवाले हिन्दुस्थान पहुंचनेका जलमार्ग ढूँढ़ने लगे। इसी समय यूरोपवालोंको यह सिद्धान्त पहले पहल मालूम हुआ कि पृथ्वी गोल है और जहांसे मनुष्य चलेगा अन्तको वहीं पहुंच जायगा। इसके साथ ही मेरिनर्स कम्पास (नाविक यन्त्र) का आविष्कार हुआ जिसके कारण तटके समीप जहाज ले जाकर दिशा ज्ञान करनेकी आवश्यकता नहीं रही। इसके कारण समुद्रयात्राके लिये लोगोंको विशेष साहस हुआ।

पोर्तुगालका राजा हेनरी इस क्षेत्रमें साहस करने वाला पहला व्यक्ति था। नये देशोंका पता लगानेके लिये उसने कई जहाज भेजे, पर १४६० में वह जब मरा तबतक किसी देशका पता नहीं लगा था। पर उसके साहससे पोर्तगीज जातिमें एक बल आ गया था और १४८६ में बारथलम्यू डाएज अफ्रिकाके तटतक गया और अन्तरीपतक पहुंचकर लौट आया। इसका नाम उसने तूफानोंका अन्तरीप रखा।

ग्यारह वर्ष बाद दूसरे पोर्तुगीज़ बास्कोडिगामाने इसी अन्तरीपसे चलकर हिन्दुस्थानका पता लगाया और तूफानोंका अन्तरीप उसके लिये "उत्तमाशय अन्तरीप" हो गया। पोर्तुगीजोंकी देखादेखी स्पेनवालोंने भी प्रयत्न आरम्भ किया और हिन्दुस्थान पहुंचनेके लिये व्यग्र हो उठे। अन्तको जिनोआ (इटाली) का रहने वाला एक अदम्य साहसका मनुष्य क्रीस्टोफर कोलम्बस स्पेन आया और उसने स्पेनके राजाको इसके लिये तैयार किया। कोलम्बसने कहा, दुनिया यदि गोलाकार है तो मैं पोर्तुगीजोंकी तरह पूरब दिशामें न जाकर पश्चिम दिशामें चलकर भी हिन्दुस्थान पहुंच जाऊंगा। १४६२ के ३ अगस्तको वह स्पेनसे रवाना हुआ। सत्तर दिनतक वह बराबर चलता गया, पर कोई देश दिखलायी नहीं दिया। अन्तको उसके साथियोंने उसे डराया कि लौट चलो नहीं तो तुम्हें समुद्रमें डाल हम वापिस चले जायंगे। पर कोलम्बसके बहुत प्रार्थना करनेपर वे आगे बढ़े। अन्तको कोलम्बसको एक द्वीप समूह दिखलायी दिया। उसने समझा यह हिन्दुस्थानका एक भाग है और स्पेन लौट आया। कुछ दिनोंके बाद वह फिर गया और इस बार जहाजसे उतरकर उसने देखा कि उसे एक महानभूमि खण्ड मिलाया जो हिन्दुस्थान नहीं है। इसलिये पहले द्वीप समूहका नाम जिसे उसने गलतीसे हिन्दुस्थान समझा था, "वेस्टइण्डिज" रखा क्योंकि हिन्दुस्थान "इस्टइण्डिज" है। कोलम्बस १५०६ में मरा पर

इसके पहले कई सामुद्रिक यात्रा कर उसने स्पेनके लिये जैमेका, ट्रिनिडाड आदिका पता लगाया। कोलम्बसके अनुकरणसे पोर्तुगीजोंने और साहस किया। अटलांटिक सागरमें भ्रमणकर उन्होंने ब्रेजिलका पता लगाया। १५२० में मगलेन भूगोलके चारों ओर जहाजसे यात्रा कर आया। हिन्दुस्थान और ब्रेजिलके सिवा, मलाका और दक्षिण अफ्रिकामें कुछ देशोंका पता पोर्तुगीजोंने लगाया। स्पेनवालोंने भी दक्षिण अफ्रिकामें तथा प्रशांत महासागरमें और देशोंका पता लगाया। इस प्रकार स्पेन और पोर्तुगल यूरोपके दो शक्तिशाली देश हो गये। पर पोर्तुगाल स्वयं बहुत छोटा राष्ट्र होनेके कारण इन देशोंपर शासन नहीं कर सकता था। इसके विरुद्ध स्पेन इनपर कड़ा शासन कर सकता था। इस प्रकार पोर्तुगालका यह साम्राज्य व्यापारके लिये था और स्पेनका साम्राज्य सम्पत्ति और शासन दोनोंके लिये।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, इस नयी दुनियाकी खोजमें इङ्गलैंड बहुत पीछे था। पर जब स्पेन और पोर्तुगालका यश सर्वत्र फैलने लगा तो वह इङ्गलैंडतक भी पहुंचा। उसे सुनकर अंगरेजोंने भी अपनी किस्मत आजमाईकी ठानी। जान कैबट नामका एक मनुष्य जो जिनोवाका रहनेवाला था इङ्गलैंडके लिये नये देशोंका पता लगाने निकला। १४९७ में उसने न्यू फाउण्डलैण्डका पता लगाया और उत्तर अमेरिकाके तटतक पहुंचा। यह खबर लेकर जब वह इङ्गलैंड लौटा तो

इङ्गलैंडके राजा सातवें हेनरीने उसे दस पौंड इनाम दिया। पर वह देश, जो सोनेका देश था हिन्दुस्थान था और सब उसे पानेके ही लिये लालायित थे। इसके लिये पोर्तुगीजोंने पूरबी राहसे यात्रा आरम्भ की थी और स्पेन वालोंने पश्चिमकी ओरसे। इसलिये अङ्गरेज उत्तर रुख रवाना हुए। सर हेगविलोवाई और फ्राविसर आदि अंगरेज नाविक बड़ी दूरतक गये, पर उन्हें कहीं कुछ न मिला। तब उन्होंने अपना यह प्रयत्न छोड़ दिया और उसी ओर बढ़े जिस ओर स्पेनवाले तथा पोर्तुगीज गये थे। अंगरेजी नाविकोंमें ड्रेक नामक एक बड़ा साहसी मनुष्य था उसने उत्तर अमेरिकाके तटसे होकर भ्रमण किया और ब्रिटिश कोलम्बियाका, जो इस समय कैनेडाका एक अङ्ग है, पता लगाया। पर अधिकांश अंगरेजोंको नये देश खोजनेकी चिन्ता छोड़नी पड़ी। उन्होंने जिस प्रकार हो स्पेन द्वारा खोजे गये देशोंमें होनेवाले व्यापार और मिलनेवाले धनमें भाग लेनेका यत्न किया। कुछ अंगरेजोंने तो नेग्रोंको पकड़ पकड़ कर बेंचना आरम्भ किया और कुछ अंगरेजी जहाजी बेड़ोंने समुद्री डाका डालना आरम्भ कर दिया। स्पेनके व्यापारी जहाजको जहां इक्के दुक्के पाते लूट लेते या चोरीसे स्पेनके अधीन देशोंमें व्यापार करते। पहला अंगरेज जिसने नेग्रोंको बेंचना आरम्भ किया उसका नाम जान हाकिन्स था। उसने एक जहाजी बेड़ा बनाया और आफ्रिकाके तटके गाँवोंसे

नेग्रोंको पकड़ पकड़ कर स्पेनके अधीन देशोंमें चोरीसे वेंचता था। अपने इस व्यापारमें हाकिन्स किस प्रकार निन्दनीय कार्य्य करता था उसका पता स्वयं उसके ही वर्णनसे लगता है। १५६७ की एक घटनाका उल्लेख करते हुए उसने लिखा है कि मैं अफ्रिकाके एक कसबेमें गया जिसकी सभी झोप-ड़ियां ताड़के सूखे पत्तोंकी थीं। कसबेमें आग लगा दी। ८००० मनुष्यमें सभी जल गये। केवल २५० मनुष्योंको पकड़ कर गुलाम बनानेके लिये बेच सका। अंगरेजोंके इस प्रकारके कार्य्यसे स्पेन, जो कि उस समय सबसे शक्तिशाली राष्ट्र था बड़ा क्रुद्ध हुआ। वहांके राजाने १२० जहाजोंका एक बेड़ा बनवाया जिसका नाम "अजेय अरमडा" रखा। उसने इस जहाजी वेड़ेको इङ्गलैण्डको नष्ट कर देनेके लिये भेजा। इङ्गलैण्ड जिसका उस समयतक संसारमें कोई स्थान नहीं था, जिसके पास केवल लुक छिपकर हमला करनेवाले छोटे छोटे जहाज थे, इससे बहुत डर गया। पर इस समय इङ्गलैंडकी रक्षा भगवानने की। अरमडा जब इङ्गलिश चैनेलमें पहुंचा तो जोरोंसे आंधी आयी। अंगरेजोंने मुकाबला नहीं किया। पर जब अरमडा आगे बढ़ा तो अपने छोटे छोटे जहाजोंपर पीछेसे उन्होंने आक्रमण किया। इनका मुकाबला करनेके लिये अरम-डाके जहाजोंके पीछे फिरनेकी आवश्यकता थी, पर तूफानके कारण ऐसा हो नहीं सकता था। इसलिये स्पेनकी हार हुई, अंगरेजोंने विजय पायी। १२० जहाजोंसे टूटे फूटे केवल ५४

जहाज लौट कर स्पेन गये। चाहे विजय जिस कारणसे भी हो, पर यूरोपीय संसारके सर्वशक्तिशाली स्पेनको इस बुरी तरह हरानेके कारण सामुद्रिक लड़ाईमें इङ्गलैण्डकी बड़ी धाक जम गयी। इङ्गलैण्ड प्रसिद्ध हो गया और जलयुद्धमें उसकी यह प्रतिष्ठा आजतक बनी है। इङ्गलैण्डकी धाक जम गयी यह एक बड़ी बात हुई। पर इसके सिवा इस सौ वर्षमें इङ्गलैण्डको और कोई लाभ नहीं हुआ। १६०० ईस्वीतक इङ्गलैण्डके बाहर इङ्गलैण्डकी एक इंच जमीन भी नहीं थी। यह ठीक है कि सर हम्फ्री गिलबर्टने न्यूफाउण्डलैण्ड और सर वालटर रेलेने वरजिनियामें उपनिवेश बसानेका प्रयत्न किया था, पर दोनों जगह कामयाबी नहीं हुई।

अमेरिका आदि जिन नये देशोंका पता लगा था वे जनाकीर्ण नहीं थे। इसलिये वहां उपनिवेश बसाकर साम्राज्य बढ़ानेका बड़ा साधन था। पर १६०० तक अंगरेज नेग्रोंका व्यापार करने या लुकछिपकर व्यापार करनेमें ही लगे थे। वास्तवमें यह शताब्दि उनकी शिक्षाका समय था। उन्हें मालूम नहीं था कि वे क्या करें। पर अन्तको उन्हें यह बात सूझ गयी और इसका एक ऐसा कारण उपस्थित हुआ जो साधारणतः हर जगह नहीं होता। मैं पहले बतला चुका हूं कि १५८३ में सर हम्फ्री गिलवर्ट और १५८४ में सर वालटर रेलेने न्यूफाउण्डलैण्ड और वरजीनियामें उपनिवेश बसानेका प्रयत्न किया था, पर वे विफल रहे। इसका कारण यह था कि वहांका जलवायु अंगरेजोंके उपयुक्त नहीं

था। इसके सिवा खेत तो वहां थे, पर खेती करनेवाले नहीं थे। अन्तको अफ्रिकाके नेग्रोंको पकड़कर मजूर बनानेका सस्ता मार्ग मिल गया और वरजिनिया जो रेलेसे बस नहीं सका था, रेलेकी मृत्युके बाद करीब २,००० लोगोंका उपनिवेश हो गया। इन देशोंमें उपनिवेश अच्छी तरह नहीं बसनेका एक कारण यह भी था कि घर छोड़कर लोग वहां जाकर बसनेके लिये तैयार नहीं थे। पर पहले जेम्सके समय इङ्गलैण्डमें धार्मिक अत्याचार खूब बढ़ा। प्यूरिटन सम्प्रदायके लोगोंके लिये इङ्गलैण्ड छोड़कर भागनेके सिवा दूसरा उपाय नहीं था और इनमेंसे अधिकांश भागनेको तैयार हो गये। इन लोगोंने सोचा कि नये देशोंमें हो चलकर बसें क्योंकि वहां धार्मिक स्वतन्त्रता तो रहेगी। इसलिये १६२० के मई महीनेमें "मेपलावर" नामक एक छोटे जहाजपर १८० प्युरिटन रवाना हुए। इन लोगोंने वर्जिनिया जाना सोचा था पर इनका जहाज दूसरी ओर बह गया और छः महीना जलमें रहनेके बाद वे केपकाडके पास जाकर उतरे। यहांके वाशिन्दे जङ्गली थे और बहुत थोड़ी संख्यामें थे। इसलिये उनसे उन्हें कोई कष्ट नहीं पहुंचा। इनके पास खाने पीनेको कुछ भी न था, पर संसारमें इनका और कहीं ठिकाना नहीं था। इसलिये वे वहीं रहे और अपने परिश्रमसे इसे रहने लायक बना लिया। इनकी सफलताकी खबर जब इङ्गलैण्ड पहुंची तो और भी प्यूरीटन वहां चले गये और १६२८ में एक नया उपनिवेश मासाचुसेट्स इस तरह

इसके दस ही वर्ष बाद २०००० मनुष्य यहां हो गये। इसके सिवा और उपनिवेश बसे और अमेरिकाके तटपर प्युरिटनोंका एक उपनिवेश समूह हो गया जिसका नाम उन्होंने न्यू इङ्गलैण्ड रखा। पर उपनिवेश केवल प्युरिटनोंका ही नहीं बना। अन्य सम्प्रदायके लोग या राजनीतिक दलके लोग जिन्हें इङ्गलैण्डमें कष्ट था वहां जा बसे। १६३४ में लार्ड बालटीमूरने कैथोलिक सम्प्रदायवालोंके लिये एक उपनिवेश बसाया जिसका नाम मेरीलैण्ड रखा। १६६३ में उत्तर और दक्षिण कारलोनियाके उपनिवेश भी इसी प्रकार बसे। इसके बाद १६८१ में विलियम पेनने क्वेकरोंके लिये पेनसेलवेनिया बसाया। इस प्रकार साधारणतः जो इङ्गलैण्डकी बुराई थी उससे इङ्गलैण्डकी भलाई हो गयी। इङ्गलैण्डमें समय समयपर भिन्न भिन्न धार्म्मिक सम्प्रदायों और राजनीतिक दलोंपर अत्याचार नहीं होता तो अंगरेजोंके ये उपनिवेश कभी नहीं बसते। देश छोड़कर दूर विदेशमें बसनेके लिये लोगोंको मजबूत करना कठिन होता, पर धार्म्मिक और राजनीतिक अत्याचारोंके कारण स्वयं लोग भाग गये। उत्तर अमेरिकामें अंगरेजोंके जो १३ उपनिवेश बसे उनमें ग्यारह इन्हीं कारणोंसे बसे थे।

इङ्गलैंडके अधीन जो देश आये उनकी तीन अवस्था है। पहली अवस्था वह है जिसे हम सोलहवीं शताब्दीमें पाते हैं जब इङ्गलैंडने न्यू फांउडलैंड और ब्रिटिश कोलम्बिया जैसे देशोंका केवल पता लगाया। दूसरी अवस्था वह है जिसका वर्णन मैं

ऊपर कर चुका हूं, जिसमें अंगरेजोंने जाकर उपनिवेश बसाया। तीसरी अवस्था वह है जिसमें विजय या सन्धि द्वारा इङ्गलैंडको दूसरे राष्ट्रोंके अधीनस्थ देश मिले। हम देख चुके हैं कि इङ्गलैंडके पहले स्पेन और पार्तुगाल नयी दुनियामें बहुत बढ़ गये थे। पर इङ्गलैंडका प्रतिद्वन्द्व केवल इन्हींसे नहीं था। इङ्गलैंडके साथ ही फ्रान्स और हालैंड भी नयी दुनियामें अपनी किस्मत आजमानेके लिये निकले थे। सन् १५२४ में वेरुज़ानो नामक एक फ्रान्सीसीने अटलाण्टिक महासागरके तटवर्ती उत्तर अमेरिकाके किनारे किनारे फ्लोरिडासे न्यू फाउण्डलैंडतक भ्रमण किया और फ्रान्सके राजाके नाममें उसपर दावा प्रकट किया। १५३४ में जाकस कार्टियर नामक फ्रान्सीसी सेण्ट लारेन्स नदीतक अपना जहाज ले गया और सारे देशका नाम न्यू फ्रान्स रखा। फ्रान्सीसियोंके सिवा डच भी नये देशोंकी खोजमें निकले, पर उनके लिये अब कोई देश बाकी नहीं रह गया था। इसलिये वे नये देशका पता न लगा सके, पर उन्होंने अपना व्यापार खूब बढ़ाया।

पर केवल डचोंका ही नहीं सभी यूरोपीय राष्ट्रोंका प्रधान उद्देश व्यापार ही था। नये देशोंको खोज करने तथा उन्हें अपने अधीन करनेकी चिन्ता सबको थी। इस चिन्तामें इङ्गलैण्ड किसीसे पीछे नहीं था क्योंकि जैसा नैपोलियनने कहा था यह बनियोंकी जाति है। पहली अंगरेज कम्पनी जिसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी कहते हैं और जिससे प्रत्ये

हिन्दुस्थानी परिचित है १६०० में बनी थी। इसने हिन्दुस्थानमें व्यापार करनेका चार्टर लिया। इसके दो वर्ष बाद ही डचोंने भी एक अपनी ईस्ट इण्डिया कम्पनी खड़ी की। जिन देशोंमें इन यूरोपियन ज्ञातियोंका व्यापार करना था वे दूर थे इसलिये अपने व्यापारकी रक्षा और सुभीतेके लिये इन्हें ठौर ठौर अपने अड्डे बनाने पड़ते थे। अंगरेजोंकी बम्बई, कलकत्ते और मद्रासकी कोठियां इसी उद्देशसे बनी थी। हम जानते हैं कि अंगरेज और डचोंसे पोर्तगीज पूर्वी देशोंमें व्यापार करने पहले आये थे। उन्होंने अलगोआ और डेलगोआमें अपना व्यापारिक अड्डा बनाया था। इसके बाद हिन्दुस्थानके मार्गमें डचोंने अपना अड्डा दक्षिण अफ्रिकाके केप टाउनमें बनाया और अंगरेजोंने अटलाण्टिक सागरके सेण्ट हेलेनामें अपना अड्डा बनाया। अंगरेजोंने केवल ईस्ट इण्डिया कम्पनी नहीं बनायी, उन्होंने रशियन कम्पनी और अफ्रिकन कम्पनी भी बनायी जिन्होंने मार्गमें ऐसे ही व्यापारिक अड्डे खड़े किये। पूरबके सिवा पश्चिमके नये देशोंसे भी व्यापार सम्बन्ध बढ़ा जिनके कारण अंगरेजोंके कई व्यापारिक अड्डे बन गये। इस प्रकार बारबडास, बरउडास, सेण्टकिट आदि स्थान अंगरेजोंके हाथ आगये। इसी समय अधीन किये हुए स्थानोंमेंसे एक प्रसिद्ध स्थान जमैका है जो स्पेनवालोंसे इङ्गलैण्डको मिला।

इस नये व्यापारसे होनेवाले लाभको प्रत्येक यूरोपीय राष्ट्र अपने लिये ही रखना चाहता था। इसलिये चाहे स्पेनवाले,

चाहे पोर्तुगीज, चाहे फ्रान्सीसी, चाहे अंगरेज प्रत्येक इस बातकी कोशिस करता था कि वह और सबोंको निकालकर स्वयं सर्वं सर्वा हो जाय। प्रयत्न इसके लिये सबने किया पर सफलता इसमें इङ्गलैण्डको ही हुई। इसका कारण यही है कि इङ्गलैण्डकी बारी बार सबसे शत्रुता हुई। पर इङ्गलैण्डका जिस समय जो शत्रु था उसके शत्रु और भी थे। इसलिये इङ्गलैण्डके एक समयके शत्रु दूसरे समय तीसरेके विरुद्धमें मित्र बने रहे और इङ्गलैण्ड इस प्रकार सदा बढ़ता गया। हम देख चुके हैं कि पोर्तुगीज पूरब देशोंमें व्यापार करने आये थे और इङ्गलैण्ड और हालैण्डके लोग भी पीछे यहां आये। डच और पोर्तुगीजोंकी लड़ाई हो गयी और धीरे धीरे डचोंने पुर्तगीजोंको पूरबसे निकाल भगाया। सतरहवीं शताब्दीके मध्यतक डच ने पोर्तुगीजोंसे मारिशस, सिलोन, मलाका ले लिया और वे पश्चिम अफ्रिकाके तट, परशियनगल्फ, बर्मा, और टसमानिया-तक फैल गये। १६२१ में डचोंने पोर्तुगीजोंसे ब्रेजिल ले लेनेकी इच्छासे एक वेस्ट इण्डिया कम्पनी बनायी और एक ही वर्षके बाद हडसन नदीके किनारे उन्होंने न्यू अमसटरडम बसाया।

पोर्तुगीजोंको डचोंने जब इस प्रकार भगा दिया तब उनकी मुठभेड़ इङ्गलैण्डसे हुई। पर लड़ाई आरम्भ अंगरेजोंने ही की। १६५१ में इङ्गलैण्डने यह कानून बनाया कि इङ्गलैण्डमें व्यापारका जो माल आवे वह या तो अंगरेजी जहाजपर आवे

था उस देशके जहाजपर जहांका वह माल हो। इस कानूनसे डचोंकी बड़ी हानि हो सकती थी क्योंकि संसारका अधिकांश व्यापार उस समय डच जहाजोंपर ही होता था। इसलिये दूसरे वर्ष युद्ध छिड़ गया जो करीब २१ वर्षतक चलता रहा। यह युद्ध सामुद्रिक था। इसमें कभी अंगरेज जीतते थे और कभी डच। प्रारम्भमें डचोंने ही बड़ी बहादुरी दिखलायी। इङ्गलैंडकी जहाजी शक्ति हालैंडके बराबर न थी। हालैंडके जहाज कई बार इङ्गलिश चैनेलतक गये और अंगरेजी युद्ध जहाजोंको भी जलाया। पर अन्तमें विजय अंगरेजोंकी हो जाती थी क्योंकि वे अपनी सारी शक्ति डचोंके विरुद्ध लगा सकते थे। पर डचोंको दूसरे राष्ट्रोंकी भी प्रतियोगिता थी। इन युद्धोंके परिणाम स्वरूप अंगरेजोंने डचोंसे हिन्दुस्थान तथा अन्य पूर्वी देशोंसे व्यापार करनेका स्वत्व प्राप्त कर लिया। इसके सिवा अमेरिकामें न्यू अमस्टरडम जो डचोंका था वह भी अंगरेजोंको मिल गया और उसका नाम न्यू यार्क रखा गया। इस प्रकार इङ्गलैंडकी सामुद्रिक प्रधानता जो अरमडाको हरानेसे स्थापित हुई थी डचोंको हरानेसे और भी बढ़ गयी और अपना व्यापार बढ़ानेका यथेष्ट अवसर इङ्गलैंडको मिला।

इस प्रकार इङ्गलैंड जिसे १६०० तक इङ्गलैंडके बाहर पाँव रखनेकी कोई जगह नहीं थी वह सौ वर्षके बाद अर्थात् १७०० इस्वीतक समुद्र पार कई देशों और उपनिवेशोंका मालिक हो गया। इसके विरुद्ध इसके प्रतिद्वन्द्वियोंका बल घटता

गया। स्पेनकी प्रतिष्ठा अभीतक प्रायः ज्योंकी त्यों थी पर वह अब यूरोपका सर्वशक्तिशाली राष्ट्र नहीं था और उसे आगे बढ़नेकी आशा भी नहीं थी। पोर्तुगालका प्रायः सारा साम्राज्य नष्ट हो गया था केवल ब्रेजिलमें ही उसका साम्राज्य था। इस शताब्दीके पूर्वार्द्धमें डच बहुत बढ़ गये थे। पर उत्तरार्द्धमें वे अंगरेजोंसे हार गये और सामुद्रिक शक्तिमें इङ्गलैंडका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहा। पर इङ्गलैंडका एक बड़ा जबरदस्त प्रतिद्वन्द्वी रह गया था जिसकी जिक्र अभी विशेष नहीं हुई है। हमने देखा है कि अंगरेजोंके साथ फ्रान्सीसी भी नयी दुनियामें आगे बढ़े थे। हम यह भी देख चुके हैं कि सन् १५३४ में जेकस कारटियरने कैनडाका पता लगाया था। पर यहां उस समय उपनिवेश नहीं बस सका। सन १६०४ में सेण्ट लारेन्स नदीके मुहानेपर फ्रान्सीसियोंने एक उपनिवेश बसाया और इसका नाम आकाडी रखा। इसके बाद क्यूबेक आदि अन्य कई उपनिवेश फ्रान्सीसियोंने बसाये। इसके सिवा हिन्दुस्थान और अन्य पूर्वीदेशोंमें फ्रान्सने भी व्यापार बढ़ानेका प्रयत्न किया। अंगरेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी १६०० में बनी थी और फ्रान्सीसी इस्ट इण्डिया कम्पनी १६७६ में बनी। इस प्रकार इङ्गलैण्ड और फ्रान्सका प्रतिद्वन्द्व प्रत्येक जगह आरम्भ हो गया और वास्तवमें फ्रान्स ही सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी था जिसके साथ इङ्गलैण्डको अन्ततक लड़ना पड़ा। चौदहवें लुईके समय १६८९ में इङ्गलैण्ड और फ्रान्सके जिस युद्धका सूत्रपात

हुआ उसका अन्त वाटरलूमें १८१५ ईस्वीमें हुआ और इसके बाद इङ्गलैण्ड प्रतिद्वन्द्वी रहित सर्वशक्तिशाली राष्ट्र हो गया।

अमेरिकामें इङ्गलैंड और फ्रान्स दोनोंके उपनिवेश थे। फ्रान्सीसी दक्षिणकी ओर बढ़ते गये और अंगरेज उत्तरकी ओर। अन्तमें दोनोंका सामना हुआ। दोनों एक दूसरेको नहीं देख सकते थे इसलिये वैमनस्य बढ़ता गया। अगरेजी उपनिवेश मजबूत थे क्योंकि इङ्गलैंडसे निकाले अंगरेज वहां सदाके लिये बस गये थे। फ्रान्सीसी उपनिवेश कम जोर थे क्योंकि फ्रान्सीसी वहां थोड़े थे और फ्रान्स यूरोपमें सर्वशक्तिशाली राष्ट्र होनेके कारण सबकी ईर्षाका पात्र था इसलिए इन उपनिवेशोंमें अधिक सेना नहीं भेज सकता था। इसलिये जब इन उपनि-वेशोंमें लड़ाई हुई तो अंगरेज औपनिवेशिकोंने प्रायः अमेरिकाके सभी फ्रान्सीसी उपनिवेशोंपर कब्जा कर लिया। पर १६३२ में जो सन्धि हुई उसमें फ्रान्सके सब उपनिवेश अंगरेज़ोंने लौटा दिये। इसके बाद दोनों शान्तिसे रहे। पर इस शताब्दीके अन्तमें अगरेजोंको मालूम हुआ कि फ्रांनसीसी अमेरिकाके भीतरी भागोंमें दूरतक पहुंच गये हैं। और इस प्रकार जितनी जमीनका पता उन्होंने लगाया है उसपर कब्जा करना चाहते हैं। अङ्गरेज औपनिवेशिक इससे व्यग्र हो उठे। उन्होंने समझा कि जहां अमेरिकाके भीतरी भागपर फ्रांसका अधिकार हुआ कि हमारा नाश हुआ।

चौदहवां लुई शक्तिशाली था। यूरोपमें उसकी प्रधानता

थी हो, पर नयी दुनियामें भी वह अपनी प्रधानता स्थापित करना चाहता था। इसलिये अन्य यूरोपीय राष्ट्रोंसे जिनका नयी दुनियासे सरोकार था, इसका बिगाड़ हो गया। अन्तको हालैंडसे लड़ाई छिड़ गयी। अङ्गरेजोंको बड़े मौकेसे यह सुअवसर मिला और वे भी हालैंडके साथ हो गये। इस प्रकार फ्रांसके साथ शत्रुता होनेके कारण हालैंड अपने एक समयके शत्रु इङ्गलैण्डके साथ हुआ। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं यह लड़ाई १६८९ में आरम्भ हुई और १६९७ तक चली। डच और अङ्गरेज मिलकर सामुद्रिक युद्धमें फ्रांसिसियोंसे अच्छे रहे पर स्थल युद्धमें ये उसका मुकाबला न कर सके। दोनों पक्षने एक दूसरेका देश जीता पर पूर्ण रूपसे एक दूसरेको दबा न सके। इसलिये १६९७ में रिजविककी सन्धि हुई और एक पक्षने दूसरे पक्षको सारा विजित देश लौटा दिया।

पर यह सन्धि अधिक दिनोंतक न रह सकी। इसके पांच ही वर्षके बाद वह युद्ध आरम्भ हो गया जिसे स्पेनके उत्तराधिकारी सम्बन्धी युद्ध कहते हैं। १७०० ईस्वीमें स्पेनके राजाकी मृत्यु हुई। उसके कोई सन्तान नहीं थी इसलिये वह अपना राज्य फ्रांसके राजाके पौत्रके लिये छोड़ गया। यूरोप और नयी दुनियां दोनों जगह ये दोनों देश इसी तरह शक्तिशाली थे। पर अब इन दोनोंके मेलसे जिस महान शक्तिके उत्पन्न होनेकी संभावना थी उससे इङ्गलैण्डका व्यग्र होना स्वाभाविक था। इङ्गलैण्ड समझता था कि ये दोनों शक्तियां मिलकर हमारा

सारा उपनिवेश छीन लेंगी और हमारा सारा व्यापार भी बन्द हो जायगा। पर इङ्गलैण्ड करता तो क्या करता। अङ्गरेज जाति सीधी लड़ाई नहीं लड़ती वह किसीकी ओर होकर ही लड़ती है। जिसमें लड़ाईकी हानि तो दूसरोंको सहना पड़े और विजयका लाभ और श्रेय अङ्गरेजोंको मिले। क्योंकि हारनेपर वह देश हारेगा और जीतनेपर यह समझा जायगा कि लड़ाई अङ्गरेजोंकी ही मददसे जीती जा सकी है। अन्तको फिर इसे हालैण्ड मिल गया। हालैंडको भी अपने व्यापारके सम्बन्धमें ऐसा ही डर था। पर इससे भी बड़ा डर उसे यह था कि ये दोनों मिलकर स्वयं हालैण्डको ही न दबा बैठें। इङ्गलैण्डको समुद्रसे घिरे रहनेके कारण स्वयं अपने अस्तित्वके संबन्धमें वह भय नहीं था। इस प्राकृतिक विभिन्नताके ही कारण आगे हम देखेंगे कि इङ्गलैंडने इस लड़ाईमें जीते गये सब देश ले लिये और हालैंडने अपनी जान बचनेसे ही सन्तोष कर लिया। अस्तु-इस भयके कारण दोनों स्पेनसे लड़नेके लिये तैयार हुए और इन्होंने अपनी ओर जर्मनीके राजाओंको मिला लिया। यह युद्ध १७०२ से १७१३ ईस्वी तक हुआ। युद्धक्षेत्र यूरोप ही रहा और अधिकांश लड़ाई स्थलपर ही हुई। इङ्गलैंडसे कुछ सेना ले मारलबरो हालैण्ड गये और हालैंड वालोंके साथ मिलकर फ्रांसके विरुद्ध लड़े। इन युद्धोंमें फ्रांसको हार होती गयी। इन्हीं युद्धोंके सिलसिलेमें जो जल-युद्ध हुआ उसमें स्पेनके अधीनस्थ जिब्राल्टरको अङ्गरेजोंने ले

लिया। इसके बाद मध्य सागरका माइनोरका द्वीप भी इन के हाथ आया। नयी दुनियामें भी फ्रांसीसियोंकी अवस्था अच्छी नहीं रही और १७१० में आकाडीके प्रधान नगरको अंगरेजोंने ले लिया। कई देशोंके साथ लड़नेके कारण फ्रांस थक गया इसलिये १७१३ में यूटरेटकी सन्धि हुई और स्वाभाविक ही फ्रांसको इस सन्धिमें बड़ी हानि सहनी पड़ी। अमेरिकामें इङ्गलैंडको न्यूफाउण्डलैंड, नोवास्कोटिया, हडसनकी खाड़ीके चारों ओरकी भूमि और आकाडी मिले। यूरोपमें-जिब्राल्टर और माइनोरका उसे मिला। इसके सिवा स्पेनको उसे नेग्रों-का व्यापार करनेका अधिकार देना पड़ा। साथ ही फ्रांस-को यह भी मानना पड़ा कि स्पेन और फ्रांसके राज्य अलग अलग रहेंगे। इस प्रकार यूटरेटकी सन्धिसे इङ्गलैंडके पक्षमें एक युगान्तर उपस्थित हो गया। स्पैनिश अरमडाको हराकर इङ्गलैंड अन्य राष्ट्रोंके साथ साम्राज्य और व्यापार बढ़ानेके घुड़दौड़में शामिल हुआ था पर यूटरेटमें वह इस घुड़दौड़में सबसे आगे बढ़ गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कर सकता कि १७०० ईस्वी तक फ्रांस यूरोपका सर्व्व श्रेष्ट राष्ट्र था पर यूटरेटमें उसे नीचा देखना पड़ा और उसका स्थान इङ्गलैंडको मिल गया। अब तक मध्य अमेरिका और दक्षिण अमेरिकामें स्पेनका ही एक मात्र व्यापार था। पर इस सन्धिसे इन देशोंमें नेग्रों दासोंका व्यापार करनेका स्वत्व अंगरेजोंको मिला और इस स्वत्वके बलपर अन्य वस्तुओंका व्यापार वे चोरीसे

करने लग गये। इसके सिवा एक बड़ी बात यह हुई कि हालैण्डका बल सदाके लिये टूट गया। फ्रांसके विरुद्ध यद्यपि उसकी विजय हुई पर उसे मिला कुछ नहीं। उलटे इस लड़ाईमें उसकी सारी शक्ति नष्ट हो गयी जिससे भविष्यमें वह कभी नहीं उठ सका। इस प्रकार एक ही प्रयत्नसे इङ्गलैण्डने एक प्रतिद्वन्द्वीको नीचा दिखलाया और दूसरेको सदाके लिये नष्ट कर दिया।

यूटरेटकी सन्धिके बाद करीब बीस वर्षतक कोई नयी बात नहीं हुई। चौदहवां लुई सन्धिके दूसरे ही वर्ष मर गया और उसका उत्तराधिकारी शांति रखनेके लिये अधिक उत्सुक था। पर स्पेन जिब्राल्टर और माइनोरका पानेके लिये अवश्य चिन्तित था। इसके सिवा अंगरेज जिन्हें स्पेनके उपनिवेशोंमें केवल दासोंका व्यापार करनेका स्वत्व मिला था चोरीसे सभी चीजोंके व्यापार करने लगे। इसलिये स्पेनने अंगरेजी जहाजोंकी तलाशी लेना निश्चित किया। बस १७४० में लड़ाई आरंभ हो गयी। १७४० में फ्रांसने स्पेनको सहायताका वचन दिया। १७४८ तक यह लड़ाई चली, पर इसका परिणाम कुछ निश्चित नहीं हुआ और एलास पेलकी सन्धिसे एक पक्षने दूसरे पक्षको जीता हुआ सब देश लौटा दिया। पर यह सन्धि क्षणिक सन्धि ही थी। १७५६ में फिर लड़ाई आरंभ हुई। इसे सात सालकी लड़ाई वा आस्ट्रियाके उत्तराधिकारीके संबन्धकी लड़ाई कहते हैं। प्रश्न यह था कि

जर्मनीका सर्वेसर्वा कौन हो ? आस्ट्रिया या प्रुशिया। फ्रांसने आस्ट्रियाका पक्ष लिया और इङ्गलैण्डने प्रुशियाका। पर यह तो निमित्त मात्र ही था। वास्तवमें इङ्गलैण्ड और फ्रांसकी लड़ाई इसके लिये थी कि नयी दुनियाका मालिक कौन हो। इस लड़ाईमें इङ्गलैण्ड सफल हुआ और फ्रांस विफल। इसका कारण यह था कि फ्रांसको यूरोप और नयी दुनिया दोनोंमें अपनेको शक्तिशाली बनाना था इसलिये उसकी शक्ति बंटी हुई थी और इङ्गलैण्डका यूरोपसे सरोकार नहीं था इसलिये उसने अपनी सारी शक्ति नयी दुनियामें लगा दी। आस्ट्रियाकी ओरसे लड़नेके लिये फ्रांसको अपनी भारी सेना भेजनी पड़ी। पर इङ्गलैण्डने महान फ्रेडरिकको सहायता स्वरूप केवल रुपया भेज दिया और इस प्रकार अपना सारा सैन्यबल नयी दुनियांमें फ्रांसके अर्द्ध सैन्यबलके विरुद्ध लगा सका। इसके सिवा जलयुद्धमें अंगरेज फ्रांसीसियोंसे बढ़े चढ़े थे। पर इस बीचमें फ्रांसने भी मजबूत जहाजी बेड़ा बना लिया था जिसके बल उसने अङ्गरेजोंसे माइनोरका छीन लिया था। पर नयी दुनियामें जहां लड़ाई थी वहां फ्रांसीसी औपनिवेशिक थोड़े थे और अङ्गरेज औपनिवेशिक बहुत। फ्रांस अपनी सब सेना भेज नहीं सकता था। और भेजनेका प्रयत्न भी करता था तो बीचमें ही अंगरेज जलयुद्ध ठान देते थे और वहांतक फ्रांसकी सेना पहुंच नहीं पाती थी। फिर भी फ्रांसीसी औपनिवेशिक बड़ी बहादुरीसे लड़ते रहे, यद्यपि

अन्तको अङ्गरेजोंकी अधिक संख्याके सामने उन्हें हारना पड़ा और सदाके लिये अङ्गरेजोंने फ्रांसीसियोंसे कैनाडा ले लिया। इस प्रकार अङ्गरेज बहुत बढ़ गये। अन्तमें फ्रांसके साथ तीसरी बार जो युद्ध हुआ उससे अङ्गरेजोंके सभी प्रतिद्वन्द्वि नष्ट हो गये। पर इस अन्तिम युद्धका उल्लेख करनेके पहले अमेरिकन क्रांतिका उल्लेख कर देना अच्छा होगा।

हम देख चुके हैं कि इङ्गलैंडसे निकाले गये लोग उत्तर अमेरिकामें जाकर बस गये थे और इसका नाम उन्होंने न्यू इङ्गलैंड रखा था। इङ्गलैण्ड और फ्रांसके बीच जिस अमेरिकन युद्धका वर्णन मैं अभी कर चुका हूं वह वास्तवमें इङ्गलैण्डने अपने साम्राज्यके लिये, अपने स्वार्थके लिये किया था। पर कहा गया कि यह युद्ध न्यू इङ्गलैंडरोंकी रक्षाके लिये हुआ है इसलिये उन्हें भी इसका व्यय देना चाहिये। अन्तको अमेरिकामें एक फौज रखनेके लिये इङ्गलैण्डने इनपर टैक्स लगाया। न्यू इङ्गलैंडरोंने कहा इङ्गलैण्डकी पार्लमेंटमें हमारा प्रतिनिधि नहीं है इसलिये हमपर टैक्स लगानेका उसे कोई अधिकार नहीं है। अन्तको धीरे धीरे सब कर उठा भी दिया गया। केवल चायपर कर रह गया। पर जब तीन जहाज चाय बोस्टनमें पहुंचा तो अमेरिकनोंने इसे जबरदस्ती पानीमें गिरा दिया। इङ्गलैंडको इससे बड़ा क्रोध हुआ और उसने अमेरिकनोंको दंड देनेके लिये सेना भेजी। इस प्रकार १७७५ में लड़ाई छिड़ गयी। अमेरिकनोंके पास कोई सेना नहीं थी पर जार्ज वा-

शिंगटन नामक एक अद्भुत साहस और योग्यताका मनुष्य उनमें था। उसने साधारण लोगोंकी बहादुर सेना तैयार करली। १७७६ में तेरहों उपनिवेशोंके लोगोंने मिलकर अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी और कहा, इङ्गलैण्डसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके बाद कई लड़ाइयां हुई। प्रारम्भमें अमेरिकन हारे भी पर उन्होंने आत्मसमर्पण नहीं किया। अंतको दक्षिण और उत्तर उपनिवेशोंके बीच अन्तराय खड़ा करनेका षड़यन्त्र अङ्गरेजोंने रचा। पर अङ्गरेजी जेनरल सर जान बुरज्वायन इस षड़यन्त्रको प्रयोगमें लानेके समय पकड़े गये और सारी सेनाके साथ उन्हें आत्मसमर्पण करना पड़ा। इसके बाद कुछ दिनोंतक और लड़ाई चली। अन्तको ब्रिटिश-जेनरल कार्नवालिसको हटाते हटाते वाशिङ्गटनने योर्क टाउनमें लाया। यहां कार्नवालिस कई दिनोंतक घेरेमें पड़ा रहा। अन्तको उसे सेनाके साथ आत्मसमर्पण करना पड़ा और अमेरिका स्वतन्त्र हो गया। इस प्रकार अङ्गरेज जिन्होंने फ्रांस आदि जैसे राष्ट्रोंको हराया था उसे इन औपनिवेशिकोंके साथ बुरी तरह हारना पड़ा। इसका एक प्रधान कारण यह था कि इङ्गलैण्डको कोई साथी नहीं मिला और सीधा सामना करना पड़ा जैसी लड़ाई अङ्गरेज लड़नेके आदि नहीं हैं।

अमेरिका और इङ्गलैण्ड जिस समय लड़ रहे थे उस समय फ्रांस और स्पेन अमेरिकाको सहायता देनेको प्रस्तुत हो गये। इस कारण फिर इङ्गलैण्डमें और इनमें लड़ाई आरम्भ हो गयी।

अन्तको लड़ते लड़ते सब सन्धि करनेको राजी हो गये। १७८३ में वारसेलिजकी सन्धि हुई। ग्रेटब्रिटेनने अमेरिकाकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली। उसे फ्लोरिडा और माइनोरका स्पेनको छोड़ देना पड़ा। वैसे ही टोगावो और सेण्टालुसिया फ्रांसको देना पड़ा। इसके बदलेमें फ्रांसने भी डोमीनिसिया, सेंटविंसेंट और सेंट फिट आदि स्थानोंको छोड़ दिया। इस सन्धिके बाद कुछ दिनोंतक शान्ति रही पर फिर युद्ध आरंभ हो गया। स्वयं फ्रांसमें एक बड़ी क्रान्ति हो गयी। उस समयके फ्रांसीसी राजाके अत्याचारसे प्रजा बिगड़ उठी। उसने राजा और उसके पक्षवालोंको मा डाला। इसके बाद फ्रांसीसी राष्ट्रका आतङ्क सारे यूरोपपर छा गया। अन्तको अस्ट्रिया और हालैण्डके साथ फ्रांसको लड़ाई आरम्भ हुई। इङ्गलैण्ड इनके साथ हो गया। लड़ाई १७९३ में आरंभ हुई। १७९४ में फ्रांस एक गहरी सामुद्री लड़ाईमें हार गया। इस युद्धमें फ्रांसके जहाज प्रायः नष्ट हो गये। इसलिये फ्रांसने हालैण्डपर कब्जा कर लिया और इसके जहाजी बेड़े उसके अधीन हो गये। स्पेनपर भी दबाव डालकर फ्रांसने उसे अपनी ओर कर लिया। फ्रांसीसी और स्पैनिश जहाजी बेड़े इङ्गलैंडपर आक्रमण करनेके लिये ठीक किये गये और डच जहाजी बेड़ा आयरलैण्डमें सेना पहुंचानेके लिये ठीक किया गया। पर अङ्गरेजोंकी जलयुद्ध सम्बंधी शक्ति फिर भी श्रेष्ठ थी। इसके सिवा डच और स्पेनिश जहाज

अलग अलग होनेके कारण उनकी शक्ति बंट गयी। इसलिये फ्रांसकी यह इच्छा पूरी नहीं हुई। इसके बाद इङ्गलैण्डसे जलयुद्धमें लोहा लेनेका साहस फ्रांसमें नहीं रहा। फ्रांसकी इस शिथिलतासे लाभ उठा ब्रिटेन स्पेन और हालैंडके अधीनस्थ उपनिवेशोंपर इस बहाने कब्जा जमाने लगा कि यदि इङ्गलैण्ड इनपर अधिकार नहीं जमावेगा तो फ्रांसके अधीन वे चले जायंगे। इस प्रकार केपकालानी, सिलोन, अस्बोयना आदिपर अङ्गरेजोंने कब्जा कर लिया। समुद्री लड़ाईमें अंगरेज सबसे शक्तिशाली थे। पर स्थलयुद्धमें अब भी फ्रांसका ही हाथ ऊपर था। इसके सिवा इस समय उन्हें नेपोलियन बोना पार्ट जैसा महान सेनापति मिल गया जिसके सामने यूरोपका कोई राष्ट्र खड़ा नहीं रह सका। नेपोलियन अंगरेजोंसे विशेष क्रुद्ध था। वह इनका बल तोड़ना चाहता था। हिन्दुस्थानसे भी अंगरेजोंको निकालनेकी बात वह सोच रहा था। इसलिये वह मिश्र तक आया और इसे जीत लिया। पर नाइलमें जो जलयुद्ध हुआ उसमें फ्रांस फिर हार गया और नैपोलियनको लौटना पड़ा। अन्तको १८०१-में फ्रांसीसीको मिश्र छोड़ देना पड़ा। नैपोलियन लड़ते लड़ते हार गया था। उसे पुनः अपनी सेना संगठन करने और इलैंड-पर विजय प्राप्त करनेके लिये जहाजी बेड़ा बनानेकी आवश्यकता जान पड़ी। इसलिये १८०२ में अमियनकी संधि हुई जिससे इलैंडको सिलोन और ट्रिनिडाड छोड़ फ्रांस,

स्पेन और हालैण्डका सारा देश लौटा देना पड़ा। नेपोलियनने भी मिश्र और दक्षिण इटली छोड़ दिया।

पर नैपोलियन अंगरेजोंको क्षमा नहीं कर सकता था। क्योंकि यूरोपका सम्राट् तो वह हो सकता था पर यूरोपके बाहर अंगरेज उसके पथके भयङ्कर कांटे थे। इसलिये फ्रांसका बादशाह बन जानेके बाद सन् १८०४ में उसने एक लाख फौज जमा किया और इंगलिश चैनेलके उसपार तटपर उन्हें चैनेल पार करनेके लिये इकट्ठा किया। उधर स्पेनके समीप उसने एक महान जहाजी बेड़ा इस फौजको चैनेल पार करानेके लिये इकट्ठा किया था। इस सेनासे वह इलैंडको नष्ट कर देना चाहता था। उसने अपने अधीनस्थ लोगोंसे कहा, यदि हम छः घण्टेके लिये इस चैनेलके मालिक हो गये तो फिर हम सारे संसारके मालिक हो जायंगे। उसे अपनी विजयका ऐसा विश्वास था कि इस विजयके उपलक्षमें उसने पहले ही मेडल बनवा लिया था। सारे इलैण्डमें आतङ्क छा गया। दिन रात लोग जगे रहते थे। किसीको नींद नहीं आती थी इङ्गलैंडमें किस प्रकार आतङ्क छाया था इसका पता इसीसे लगता है कि आज भी अंगरेज माताएं अपने बच्चोंको "बोना आया" कह कर उसी प्रकार डराती हैं जिस प्रकार घोघोके नामसे भारतीय बच्चे डराये जाते हैं। पर मनुष्यकी इच्छा कुछ नहीं है। ईश्वर जो चाहता है वही होता है। नैपोलियनकी फौज तटपर खड़ी रही उसे चैनेल पार करनेका मौका नहीं

मिला। जिस जहाजी वेड़े की प्रतीक्षा नैपोलियन कर रहा था, वह कभी नहीं पहुंचा। नेलसनने इंगलिश चैनेलके बाहर ही उससे समुद्री लड़ाई ठान ली और ट्रफाल गरके युद्धमें स्पेन और फ्रांसके सम्मिलित बेड़ोंको हराकर नष्ट कर दिया। इस प्रकार नैपोलिनकी सारी आशापर पानी फिर गया और इंगलैंडकी जान बच गयी।

पर नेपोलियन हताश होनेवाला मनुष्य नहीं था। उसने इङ्गलैण्डको तङ्ग करनेका नया उपाय सोचा। वह जानता था कि रुपयेकी मार अंगरेजोंके लिये बड़ी मार थी। वह अंगरेजोंको बनियेकी जाति कहा करता था। इसलिये यूरोप भरमें अंगरेजोंका व्यापार बन्द करानेकी उसने ठान ली। जो फौज उसने इङ्गलैण्डको नष्ट करनेके लिये इकट्ठा किया था उससे वह यूरोपके देशोंको जीतना आरम्भ कर दिया। जो देश नेपोलियनके अधीन आता उसे इङ्गलैण्डके साथ व्यापार बन्द कर देना पड़ता था। इस प्रकार इङ्गलैण्डका प्रायः सारे यूरोपसे व्यापारिक बहिष्कार हो गया। सारे यूरोपीय बन्दरगाह उसके लिये बन्द हो गये। पर यूरोपके बाहरके देशोंके बन्दरगाह इस समय प्रायः इङ्गलैण्डके हाथमें थे। इसलिये फ्रान्स और उसके साथ देनेवाले देशोंसे उसने भी बदला लेना आरम्भ किया। इङ्गलैण्डको हानि खूब पहुंची, पर इन देशोंको भी हानि पहुंची। इसके सिवा स्वेच्छासे इन देशोंने इङ्गलैण्डके विरुद्ध यह कार्य्य नहीं किया

था। वे नेपोलियनके अधीन थे इसलिये उन्हें ऐसा करना पड़ा था। इसे वे अनुभव करते थे और इससे भी बढ़कर उन्हें अपनी पराधीनताका दुःख था। इसलिये अवसर पानेपर फ्रान्सके विरुद्ध हो जाना उनके लिये स्वाभाविक था। अन्तको स्पेन और पोर्तुगाल नैपोलियनके विरुद्ध हो गये। अपना अपना बन्दरगाह उन्होंने इङ्गलैण्डके लिये खोल दिया। फ्रान्ससे उनकी लड़ाई छिड़ गयी। १८०८ में एक छोटी सेना लेकर सर आर्थर वेल्सली (जो पीछे वेलिङ्गटनके ड्यूक बनाया गया) पोर्तुगाल गया। कराब पाँच वर्षतक लड़ाई होती रही। फ्रान्सको केवल स्पेन, पोर्तुगाल और इङ्गलैण्डसे ही नहीं लड़ना था बल्कि प्रुशिया आदि अन्य दूसरे देशोंसे भी भिन्न भिन्न युद्ध क्षेत्रोंमें लड़ना था। इसलिये धीरे धीरे नैपोलियनका बल घटता गया। पहले उसे पोर्तुगालसे, फिर स्पेनसे हटना पड़ा। इस सिलसिलेमें कितनी लड़ाईयां हुई जिनका जिक्र यहां नहीं किया जा सकता। इतना भी जानना काफी होगा कि नैपोलियन हटता गया। अन्तमें लिपजिगके महान युद्धमें, जिसे राष्ट्रोंका युद्ध कहते हैं (क्योंकि फ्रान्सके विरुद्ध यूरोपके प्रायः सभी राष्ट्र लड़े थे) नैपोलियनकी गहरी हार हुई और वह कैदी बनाया जाकर भूमध्यसागरके बीच एलबा टापूमें भेज दिया गया। पर कुछ महीनोंके बाद भागकर नैपोलियन फ्रान्स पहुंचा और फिर सिंहासनारुढ़ हो गया। पर उसे अपना सङ्गठन करनेका अवसर मिलनेके पूर्व ही यूरोपके सारे राष्ट्र

उससे लड़नेको उद्यत हो गये। एल्बासे आनेके सौ दिनके भीतर ही प्रुशियन सेनाके साथ अंगरेज सेनापति वेलिङ्गटनने वाटरलूमें उसका सामना किया। नैपोलियन बुरी तरह हारा और दक्षिण अटलाण्टिक महासागरके बीच सेण्ट हेलेना द्वीपमें कैद कर भेज दिया गया जहां उसे अपने जीवनका अन्तिम समय बिताना पड़ा। इस प्रकार ब्रिटेनका सबसे महान और अन्तिम शत्रु नष्ट हो गया और इङ्गलैण्डका प्रतिद्वन्द्वी अब कोई न रहा। १८१५ में पेरिसमें सब राष्ट्रोंकी सन्धिपरिषाद हुई। इस सन्धिसे इङ्गलैण्डको प्रायः वे सभी देश मिल गये जिन्हें उसने नैपोलियनके साथ युद्धकी अवधिमें जीता था। इस प्रकार केप कोलोनी, सिलोन, ब्रिटिश गायना, हण्डुरस, ट्रबागो, माल्टा और मारिशस ब्रिटिश साम्राज्यके अङ्ग हो गये। इसके बाद उन्नीसवीं शताब्दीमें अपने उपनिवेशों और व्यापारकी निर्विघ्न उन्नति करनेका अवसर इङ्गलैंडको मिला। इङ्गलैंडके उपनिवेशोंका विकाश किस प्रकार हुआ इसका यहां थोड़ासा वर्णन कर मैं यह परिशिष्ट समाप्त करूंगा।

इलैंडका पहला उपनिवेश उत्तर अमेरिकामें बसा था। पर जैसा कि हम देख चुके हैं अठारहवीं शताब्दीमें ही यह उपनिवेश इङ्गलैंडसे स्वतन्त्र हो गया और आज संयुक्त राज्य अमेरिकाके नामसे संसारके सब शक्तिशालि देशोंमेंसे एक है। इसके बाद इलैंडका दूसरा उपनिवेश कनाडा है। कनाडाका पता पहले फ्रांसीसियोंने लगाया था और यहां

उनका ही उपनिवेश था। पर १७६३ की लड़ाईमें इङ्गलैंडने इसे जीत लिया। फिर भी यहां फ्रांसीसियोंकी संख्या अधिक थी पर जब अमेरिका और इङ्गलैंडमें लड़ाई आरंभ हुई तो वहांके बहुतसे औपनिवेशिक जो इङ्गलैंडके भक्त थे, अमेरिका छोड़कर कनाडा चले आये जिससे अङ्गरेजोंकी संख्या बहुत बढ़ गयी। इसके बाद अङ्गरेज और फ्रांसीसी औपनिवेशिक लड़ने लगे। उनकी लड़ाई मिटानेके लिये कनाडाका दो भाग, कर दिया गया। अपर कनेडा और लोअर कनेडा। अपर कनेडामें अङ्गरेज थे जिनका शासन अङ्गरेजी कानूनसे होता था और लोअर कैनेडामें फ्रांसीसी थे जिनका शासन फ्रांसीसी कानूनसे होता था। १८१२ में यूनाइटेड स्टेट्सने कैनेडापर कब्जा करनेका प्रयत्न किया था पर दो वर्षकी लड़ाईके बाद इङ्गलैंड और उसमें सन्धि हो गयी जिससे कैनेडा अङ्गरेजोंके ही अधीन रह गया। पर वहांके फ्रांसीसी और अङ्गरेज़ औपनिवेशिक बराबर लड़ते रहते थे। इसलिये १८३६ में इङ्गलैंडने लार्ड डरहमको भेजा कि वे जांच कर बतलावें कि कैनेडाका यह अन्तःकलह कैसे दूर होगा। लार्ड डरहमने यह रिपोर्ट दी कि कैनेडाको उत्तरदायी शासन दिया जाय। कैनेडाके जो दो भाग कर दिये गये हैं वे परस्पर मिला दिये जायें और दोनोंका शासन एक कैनेडियन पार्लमेण्टके अधीन कर दिया जाय जिससे अंगरेज और फ्रान्सीसी एक दूसरेको समझ सकें। १८४० में लार्ड डरहमकी बात मान इङ्गलैंडने

कैनेडाको उत्तरदायी शासन दिया और कनेडियन पार्लमेण्टकी स्थापना हुई। इसी प्रकार कैनेडाके अन्य उपनिवेशोंको भी उत्तरदायी शासन दिया गया।

पार्लमेण्ट बन जानेपर भी अंगरेज और फ्रान्सीसी लड़ते रहे और शासन कार्य्य चलाना कठिन हो गया। इसके सिवा अन्य स्वशासित उपनिवेश भी अलग रहना चाहते थे। पर धीरे धीरे देशकी उन्नतिके लिये ऐक्यका महत्व उन्होंने समझा। इसी बीच संयुक्त राज्य अमेरिकामें सन १८६१ में एक अन्तः युद्ध हो गया। कैनेडियनोंको यह भय हुआ कि इस युद्धसे छुट्टी पाते ही वहांवाले हमपर चढ़ाई कर देंगे और हमारी इस फूटसे यह देश हमारे हाथसे निकल जायगा। बहुत प्रयत्न और आशा निराशाके द्वन्द्वके बाद १८६७ में प्रमुख कैनेडियन राजी हुए, ब्रिटिश पार्लमेण्टमें एक ऐक्ट पास कराया गया जिससे पुराना कैनेडा (ओण्टारियो और क्यूबेक) नोवा स्कोटिया और न्यू वर्कस्वेक एकमें मिल गये और कैनेडियन उपनिवेशकी स्थापना हुई। १८७१ में ब्रिटिश कोलम्बिया भी इस सङ्घमें शामिल हो गया इस प्रकार प्रायः सारा कैनेडा एक सङ्घमें आ गया। वह भूमिखण्ड ३७२९६६५ वर्ग मील हैं। जिसमें ८७८७९९८ यूरोपियन और १२०० हिन्दुस्थानी रहते हैं।

कैनेडाके बाद ब्रिटेनका दूसरा महान उपनिवेश आस्ट्रेलिया है। इसका क्षेत्रफल २९७४५८१ वर्ग मील है। पर यह

विस्तृत भूमिखण्ड अंगरेजोंको बिना किसी लड़ाई भिड़ाईके मिला है। १७०० ईस्वीमें डैम्पियर नामक एक अंगरेजने आस्ट्रेलियाका पता पहले पहल लगाया। इसके बाद ७० वर्ष तक इस देशके बारेमें किसीने कुछ नहीं सोचा। लोगोंकी धारणा यह थी कि यह वीरान और पथरिली भूमि है, यहां कोई बस नहीं सकता। पर १७६८ में कैपटेन कूकने आस्ट्रेलियाके भीतरी भागमें भ्रमण किया जिससे उसे मालूम हुआ कि देशकी भूमि उपजाऊ और उपनिवेश बसाने योग्य है। जिस समय कैपटेन कूक यह खबर लेकर इङ्गलैण्ड पहुंचा उस समय वहांकी सरकारके सामने एक बड़ी समस्या उपस्थित थी। इङ्गलैण्ड अपने कैदियोंको अबतक अमेरिकामें बसनेके लिये भेजा करता था। पर अमेरिका जब स्वतन्त्र हो गया तो वहां कैदी नहीं भेजे जा सकते थे। ये कैदी चोर, डाकू न थे बल्कि धार्म्मिक और राजनीतिक विचारोंके कारण कैद किये गये थे। जहां धार्म्मिक विचारोंकी स्वतन्त्रता न थी वहां वे लोग भी नहीं रहना चाहते थे और सरकार भी उन्हें देशसे बाहर भेजनेमें ही अपनी भलाई समझती थी। इसलिये इन कैदियोंको आस्ट्रेलिया भेजनेकी मन्त्रणा ठहरायी गयी। ब्रिटिश औपनिवेशिकोंका पहला जहाज जिस समय अस्ट्रेलिया पहुंचा उसके ठीक छः दिनके बाद दो फ्रान्सीसी जहाज भी पहुंचे। पर अंगरेजोंके वहां पहले पहुंच जानेके कारण उन्हें लौटना पड़ा। इस प्रकार छः दिन आगे होनेके कारण

ब्रटेनको इतना बड़ा साम्राज्य मिल गया। प्रारम्भमें उप-निवेशकी बहुत उन्नति नहीं हुई। १८२० तक भी आस्ट्रेलियाके भीतरी भागमें केवल सिडनी शहर और इसके आसपास ही लोग बसे थे। पर १८२६ से उपनिवेश बढ़ने लगा। इसका कारण यह हुआ कि लोगोंने भीतर घुसकर और उपजाऊ जगहका पता लगाया। इसके सिवा यहां अबतक केवल कैदी भेजे जाते थे। इङ्गलैण्ड अपने कैदियोंके निकासका रास्ता इसे समझता था। देशको उन्नत करनेकी उसे इतनी परवा नहीं थी। पर पहलेके जो कैदी बस गये थे उन्होंने इसे अपना देश समझ लिया और इसकी उन्नतिके लिये प्रयत्न करने लगे। उन्होंने यह भी आन्दोलन किया कि यहां कैदी नहीं भेजे जायं और अन्तको वेण्टवर्थके आन्दोलनसे सन १८४० में कैदियोंका भेजना इङ्गलैण्डने बन्द भी कर दिया। इसके बाद वेकफील्डने बाहरसे मजूर और अन्य लोगोंको लाकर बसानेका बहुत प्रयत्न किया। इङ्गलैण्डमें जिन्हें रोजगारकी कमी थी वे वहां जानेके लिये उत्साहित किये गये। इस प्रकार वेकफील्डने कुछ लोगोंको लाकर १८३४ में अडलेड नगर बसाया। दो वर्ष बाद अंगरेजोंका दूसरा दल आकर मेलबोर्नमें बसा। इस प्रकार आस्ट्रेलियाके दक्षिण और पूरब तटपर उपनिवेश बस गये। १८६० तक सारे आस्ट्रेलिया महादेशको अंगरेजोंने छान डाला, पर इस समयतक भी इनकी बस्ती पूरब और दक्षिण तटपर ही रही। ये उपनिवेश पांच पृथक भागोंमें बंटे थे।

न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया, दक्षिण आस्ट्रेलिया, क्वीन्स लैण्ड और पश्चिमी आस्ट्रेलिया।

इन उपनिवेशोंके बस जानेपर इनमें और इङ्गलेण्डमें बराबर इसके लिये झगड़ा चलने लगा कि आस्ट्रेलियाकी शासन-पद्धति क्या हो। स्वाभाविक ही ब्रिटेन अपने स्वार्थके लिये उनका शासन करना चाहता था और औपनिवेशिकोंको यह पसन्द नहीं था। औपनिवेशिकोंने यह मांग पेश की कि केनाडाको जो उत्तरदायी शासन दिया गया है वही शासनपद्धति यहां भी दी जाय। अन्तको ब्रिटिश सरकारको यह बात माननी पड़ी और न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया, साउथ आस्ट्रेलिया और टसमानिया जो इस समयतक सुसङ्गठित हो चुके थे उन्होंने मिलकर १८५१ में एक शासन सङ्घटना तैयार की। कुछ दिनोंके बाद ब्रिटिश पार्लमेण्टको यह सङ्घटना स्वीकार करनी पड़ी। क्वीन्सलैण्डको १८५६ और वेस्टर्न आस्ट्रेलियाको १८६० में यह कानूस्टिच्युशन दिया गया। उत्तरदायी शासन पानेके बाद आस्ट्रेलियाके औपनिवेशिकोंने अपनी उन्नति करनेका प्रयत्न किया। सबसे पहले उन्हें आदमियोंकी आवश्यकता थी। पर उसी बीच सोनेकी खानका पता जो आस्ट्रेलियामें लग गया इसके कारण चारों ओरसे लोग वहां आ गये और अनायास जनसंख्या बढ़ने लगी। इस समय यहांकी केवल यूरोपीय जनसंख्या ५५ लाखकी है और दो हजार हिन्दुस्थानी भी हैं। आस्ट्रेलियामें अभी बहुत लोगोंके बसनेकी जगह है

पर वहांके गोरे हिन्दुस्थानी या किसी अन्य एशियाईको जाने नहीं देते।

उत्तरदायी शासन तो आस्ट्रेलियाके इन भिन्न भिन्न उपनिवेशोंको मिल गया, पर इनकी सारी बुराई इसीसे दूर न हुई। वे सीमा आदिके लिये परस्पर लड़ते झगड़ते रहते थे। इसी बीच फ्रान्स और जर्म्मनीने आस्ट्रेलियाके पूर्व्वोत्तरमें कुछ द्वीपों पर अधिकार जमा लिया। इसके कारण इन उपनिवेशोंको अपने अस्तित्वके विषयमें शङ्का हुई और उन्होंने सोचा ब्रिटिश जहाजी बेड़े हमारी रक्षा सदाके लिये नहीं कर सकते। अपनी आत्मरक्षाका प्रबन्ध हमें करना चाहिये। पर उनकी पारस्परिक फूट इसमें बाधक थी। अन्तको भिन्न भिन्न राज्योंके सदस्य इकट्ठे हुए और बड़ी बड़ी कठिनाइयोंके बाद उन्होंने एक सङ्घ सङ्घटना तैयार की जिसे १९०० में ब्रिटिश पार्लमेण्टने पास कर दिया। इसके अनुसार अन्तः शासन अलग अलग राज्योंकी पार्लमेण्टके जिम्मे रहा पर सेना और पर-राष्ट्रसंबंधी मामले सङ्घ पार्लमेण्टके अधीन आ गया। इसके बाद वे अपनी बराबर उन्नति करते गये और १९०९ में उन्होंने यह कानून बना दिया कि देशकी रक्षाके लिये प्रत्येक युवकको सैनिक शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये।

ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत तीसरा उपनिवेश इस समय दक्षिण अफ्रिका है। हम पहले देख चुके हैं कि उत्तमाशा अन्तरीपका पता पोर्तुगीजोंने पहले पहल लगाया। इसके बाद

ब्रिटिश नाविक ड्रेक यहां पहुंचा। पर इसके बहुत दिनोंके बादतक यहां कोई नहीं ठहरा। १६२० में दो अंगरेज कैपटेन टेनलवेमें उतरे और जेम्स पहलेके नाममें इसपर अंगरेजी सरकारकी ओरसे दखल बोल दिया। पर उस समय अंगरेजी सरकार अपना राज्य बढ़ानेकी इच्छा नहीं रखती थी और उसने इसे त्याग दिया। तीस वर्ष बाद डच ईस्ट इण्डिया कम्पनीको अपने नाविकोंके विश्रामके लिये अफ्रिकाके दक्षिण-पूर्व तटपर ठहरावकी जगह बनानेकी आवश्यकता हुई। इसलिये उन्होंने टेवल पहाड़के नीचे कुछ परिवारोंको लाकर बसाया जो सब्जी आदि उत्पन्न कर सकें। धीरे धीरे इन परिवारोंकी संख्या बढ़ने लगी और अन्तको १६९० में पहले डच गवर्नर सिमन वानडर स्टेलने दक्षिण अफ्रिकाकी ऊंची जमीन जो पहाड़ोंके चारों ओर थी उसपर उपनिवेश बसाया। इसके बाद वे धीरे धीरे बढ़ते गये और वहांकी जङ्गली जाति धीरे धीरे पीछे घने जङ्गलोंमें हटती गयी। १७७९ में उन्हें एक बहादुर जङ्गली स्वभावके मनुष्योंसे मुलाकात हुई जो मध्य अफ्रिकासे इस ओर बढ़ते आते थे। जहां गोरोंकी और इनकी मुलाकात होती लड़ाई होने लगती। यह लड़ाई करीब सौ वर्षतक चली और इस लड़ाईके बाद १८७४ में यह जाति जिसे काफिर कहा गया है हार गयी और गोरोंका प्रभुत्व हुआ। पर इसके बहुत पहले ब्रिटेनका प्रभुत्व यहां स्थापित हो गया था। फ्रान्सकी क्रान्तिके समय इङ्गलैण्ड और फ्रान्समें जो युद्ध हुआ था उसमें

हो अंगरेजोंने केप टाउनपर कब्जा कर लिया था। १८०२ में अमियनकी सन्धिसे डचोंको यह दे दिया गया। पर तीन वर्ष बाद फिर इङ्गलैण्डने इसपर कब्जा कर लिया। वहांके डच औपनिवेशिक इसके बाद शान्तिसे रहने लगे। पर १८३६ में ब्रिटिश सरकारसे अनबन हो जानेके कारण डच गृहस्थोंके कितने परिवार केपकालोनी छोड़कर आगे नयी भूमि खोजने और स्वतन्त्र राज्य स्थापित करनेके लिये निकल पड़े। वे नयी जमीन खोजते ट्रान्सवालके उत्तर लिम्पोपो नदीतक चले गये। बीचमें इन्हें बड़ी बड़ी कठिनाइयां सहनी पड़ीं और जङ्गली जातियोंके आक्रमणका सामना करना पड़ा। इनमें ज़ुलू जातिके लोग वीर थे उन्होंने डचोंको खूब कष्ट दिया, पर १८३८ में उनका बल टूट गया।

ये डच गृहस्थ जो इस प्रकार अपने लिये नया वासस्थान खोजने निकले थे इन्हें बोर कहते हैं। इनकी नयी जगहोंमें और विशेषकर डरबनमें अंगरेज आकर बस गये। अन्तको डच और अंगरेज व्यापारियोंमें झगड़ा हुआ और बीचमें ब्रिटिश सरकार पड़ गयी जिससे १८४४ में नटाल अंगरेजी राजमें मिला लिया गया। अधिकांश बोर पीछेकी ओर ऊंची भूमिपर हट गये और उन्होंने ट्रान्सवाल और अरेञ्ज फ्री स्टेटका प्रजातन्त्र स्थापित किया। पर ब्रिटेनको डचोंकी यह स्वतन्त्रता पसन्द न थी और वह इन्हें ब्रिटिश छत्रछायाके नीचे लानेका प्रयत्न करता रहा। १८५८ में अरेञ्ज फ्री स्टेट ब्रिटिश राजमें मिला

लिया गया। इसके बाद ट्रान्सवालके डचों और वहांके आदिम निवासियोंमें दङ्गा हो गया। इस अवसरसे लाभ उठा ट्रान्सवाल भी ब्रिटेनने ले लिया। ट्रान्सवाल लेनेके समय ब्रिटेनने यह प्रतिज्ञा की थी कि उन्हें उत्तरदायी शासन दे दिया जायगा। पर ब्रिटेन दूसरोंके साथ की गयी प्रतिज्ञा कभी पूरी नहीं करता है यदि इसके लिये उसे लाचार न होना पड़े। ब्रिटेन अब देते हैं तब देते हैं कह कर उन्हें भुलावा देता गया। पर बोर अधिक दिनतक नहीं ठहर सके और लड़ाई आरम्भ हो गयी। १८८१ में मंजूवामें इस काण्डकी सबसे बड़ी लड़ाई हुई। अंगरेजी सेनाको आत्मसमर्पण करना पड़ा और बोरोंने अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। कुछ समय बाद ट्रान्सवालमें सोनेकी खानका पता लगा और चारों ओरसे लोग यहां टूट पड़े। इस प्रकार नये अंगरेज यहां आकर बसे। इन्होंने फिर बखेड़ा खड़ा किया और इनकी रक्षाके लिये १८९६ में डाक्टर जेमर्सन और उसके साथियोंने ट्रान्सवालमें डच राज्य उलट देनेके लिये धावा किया। डच इससे बहुत रञ्ज हुए और दोनों ओरसे लड़ाईका सामान बन्धने लगा। तीन वर्ष बाद लड़ाई आरम्भ हो गयी। दोनों ओर जीत हार होती रही पर अन्तको बोर हार गये। इस प्रकार जब दक्षिण अफ्रिकाके चारों उपनिवेश ब्रिटिश झण्डेके नीचे आगये तो आगे अंगरेज और डचोंका झगड़ा न हो इसके लिये प्रयत्न आरम्भ हुआ और इसके लिये एक कानफरेन्स हुई। जिसके परिणाम स्वरूप १९१० में केप

कालानी, ट्रान्सवाल, नटाल और आरञ्ज फ्री स्टेट एक शासनके अधीन हो गये जिसका नाम दक्षिण अफ्रिकाकी यूनियन सरकार है। पर दक्षिण अफ्रिकाकी सारी भूमि इस यूनियनके भीतर नहीं है। १८८४ में जर्म्मनीने दक्षिण और पश्चिम अफ्रिकाका कुछ भाग ले लिया था जो जर्म्मन महायुद्धके बाद राष्ट्र सङ्घके नियन्त्रणमें इस समय ब्रिटेनके अधीन हैं। इसके सिवा रोडेसिया है जिसे सिसिल रोडस नामक एक व्यापारीने अंगरेजोंके लिये प्राप्त किया था। फिर पूर्व्वी अफ्रिकाका केनिया आदि स्थान है जिसे औपनिवेशिक स्वराज नहीं मिला है। ये ब्रिटिश साम्राज्यके अधीन क्राउन कालानीके नामसे प्रसिद्ध हैं जिनका शासन ब्रिटिश औपनिवेशिक विभागके नियन्त्रणमें होता है।

इङ्गलैण्डका सबसे अन्तिम उपनिवेश न्यू जीलैण्ड है। १६४२ में टसमान नामक व्यक्तिने इसका पता लगाया था। पर करीब सौ वर्षतक फिर यहां कोई नहीं गया। अन्तको १७६६ में कैपटेन कूकने दुबारा इसका पता लगाया। न्यू जीलेण्डके दो भाग हैं, उत्तर द्वीप और दक्षिण द्वीप। इसके बाद लोग वहां बसनेके लिये जानेकी इच्छा करने लगे पर १८३० तक कोई विशेष बस्ती नहीं बसी। इसके बाद औपनिवेशिक यहां अधिक संख्यामें आ गये। ये औपनिवेशिक उत्तर द्वीपमें बसे। १८३६ में फ्रेञ्च सरकारने दक्षिण द्वीप पर अधिकार जमानेका उपाय सोचा। ज्यों ही यह खबर ब्रिटेनको मिली कि उसने एक

ब्रिटिश औपनिवेशिकोंका दल वहां भेजा। भाग्यवश अंगरेज पहले पहुंच गये। ब्रिटिश झण्डा गड़नेके कुछ ही दिन बाद फ्रान्सीसी जहाज वहां पहुंचा, पर उसे निराश लौटना पड़ा। आस्ट्रेलियामें भी अंगरेजोंने इसी प्रकार बाजी मारी थी यहां भी वही हुआ। इसके बाद लगातार बीस वर्षतक लोग वहां जाते रहे। जब औपनिवेशिक ठीक तरहसे बस गये तो स्वाभाविक ही उन्होंने स्वशासनकी मांग पेश की। अन्तको सर जार्ज ग्रेके बहुत प्रयत्नके बाद १८५६ में ब्रिटिश सरकार उन्हें स्वशासन देनेको राजी हो गयी और दूसरे वर्ष न्यू जीलैंड पार्लमेण्टकी स्थापना हुई।

उत्तर द्वीपमें मेवारी जातिके बहादुर लोग रहते थे। उनका अपना राजा था। सर जार्ज ग्रे इस जातिको प्रसन्न रखना जानते थे पर उनके जानेपर न्यू जीलैण्डकी सरकारने इनकी विशेष परवा न की और गोरे औपनिवेशिक इस जातिके अधीन प्रदेशमें भी घुसने लगे। अन्तको १८५६ में लड़ाई आरम्भ हो गयी। मेवारियोंके पास अंगरेजों जैसा अस्त्र शस्त्र नहीं था पर वे अद्वितीय साहसी थे। वे अंगरेजोंके साथ ग्यारह वर्षतक लड़े। मेवारी कैसे बहादुर थे यह बतलानेके लिये एक उदाहरण दिये बिना नहीं रहा जाता। अंगरेजोंके साथ लड़ाई लड़नेके लिये और अपनी आत्मरक्षाके लिये उन्होंने छोटे छोटे कैम्प बना रखे थे। एक कैम्पमें कुछ मेवारी अपनी स्त्री बच्चोंके साथ थे। ब्रिटिश जेनरलने १३००

सेना ले इनपर आक्रमण किया। ये थोड़े से मेवारी दो दिन तक बिना खाये पीये इतनी बड़ी सेनाका सामना करते रहे। अंगरेज जेनरल उनकी बहादुरी देख मूक हो गया और कहा कि यदि वे आत्मसमर्पण कर दें तो वह उनकी जान छोड़ देगा। पर वे चिल्ला उठे—"हम अन्ततक सदा लड़ते रहेंगे, सदा लड़ते रहेंगे।" तब अंगरेज जेनरलने कहा "अच्छा स्त्री और बच्चोंको तो बाहर चले जाने दो।" इस पर उन्होंने कहा "मेवारी स्त्रियां मेवारी पुरुषोंके समान ही लड़ती हैं वे आत्मसमर्पण नहीं कर सकतीं।" मालूम होता है ये मेवारी साहस और वीरतामें मेवाड़ी राजपूतोंके सगे भाई थे। पर १३०० की सेनाके सामने बीस पचास मनुष्य कबतक ठहर सकते थे। अन्तको इस कैम्पपर अंगरेजोंने अधिकार जमा लिया। मेवारियों और अंगरेजोंके युद्धका अन्त १८७० में हुआ। मेवारियोंको विस्तृत भूमिखण्ड छोड़ देना पड़ा जहां दूसरे नहीं बस सकते। इसके सिवा न्यू जीलैण्डकी पार्लमेण्टमें दो प्रतिनिधि भेजनेका भी स्वत्व उन्हें मिला।

इस प्रकार कैनेडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रिका और न्यूजीलैंड ब्रिटिश साम्राज्यमें हैं। पर ब्रिटिश साम्राज्य इतना ही नहीं है। स्वयं हिन्दुस्थान ब्रिटिश साम्राज्यमें है जिसकी चर्चा हिन्दुस्थानी पाठकोंके लिये अनावश्यक समझ मैंने इस परिशिष्टमें नहीं की है। मिश्र भी ब्रिटिश साम्राज्यमें है। मिश्रके खेदिवको इङ्गलैण्ड और फ्रांसने अपनी गोटी वहां जमानेके

लिये खूब कर्ज दिया था। यही कर्ज वसूल करनेके वहाने वे मिश्रके शासनमें हस्तक्षेप करने लगे। इस कारण दोनों ओर वैमनस्य बढ़ा। १८८२ में अलेकजेंड्रियामें एक दङ्गा हो गया जिसमें कितने गोरे मारे गये। फ्रांस इस समय विदेशी माम-लोंमें उलझना नहीं चाहता था इसलिये इङ्गलैंडको अकेले मिश्रके साथ निपटनेका मौका मिला। इङ्गलैंडने मिश्रपर कब्जा कर लिया, यद्यपि शासन खेदिवके नाममें ही होता है। इधर १९२१ से इङ्गलैंडने मिश्रके आन्दोलनसे तङ्ग आ स्वाराज भी दे दिया है फिर भी मिश्रके वास्तविक शासक अङ्गरेज हैं। जैसा कि हालमें सुदानके गवर्नर सर ली स्टैककी हत्या और उसके बाद मिश्रके साथ ब्रिटेनकी नादिर शाहीमें हम देख चुके हैं। मिश्रके पास ही या यों कहिये कि मिश्रका अङ्ग सुदान है जिसपर भी अङ्गरेजोंने कब्जा जमा रखा है। यद्यपि सुदानपर उन्होंने मिश्रके खेदिवके नाममें ही और उसकी सहायतासे ही कब्जा किया था। लार्ड कीचनरके प्रयत्नसे जो खेदिवकी ओरसे सुदानके उस समयके खलीफाकी बगावत रोकने गये थे १८९८ में सुदान ब्रिटेनके कब्जमें आ गया। और जबतक हिन्दुस्थानमें ब्रिटिश राज्य है और जबतक स्वेज कनालकी जरूरत उसे है तबतक ब्रिटेन भरसक सुदानपरसे अपना कब्जा उठने नहीं देगा। इसके सिवा सिलोन, स्ट्रेटमेंट, वोर्निओका कुछ भाग, हांगकांग, उगण्डा, केनिया, गैम्बिया, जमैका, ट्रिनिडाड, बारबोडस आदि अनेक स्थान ब्रिटिश राजमें हैं जिनकी चर्चा

स्थान स्थानपर हो चुकी है और सबकी चर्चा यहां हो नहीं सकती। संक्षेपमें यही समझना चाहिये कि संसारका कोई भाग ऐसा नहीं है जहां ब्रिटिश साम्राज्य किसी न किसी रूपमें न हो।

ब्रिटेनका यह साम्राज्य कैसे बढ़ा तथा इसका भीतरी रहस्य क्या है? परिशिष्टके पढ़ जानेके बाद पाठकोंकी समझमें आ गया होगा। फिर भी मैं उसे यहां संक्षेपमें स्पष्ट कर देना उचित समझता हूं। हिन्दुस्थानको छोड़कर ब्रिटेनका अन्य जिन देशोंमें साम्राज्य है वे देश प्रायः वीरान थे। जगह खाली पड़ी थी दस पांच मनुष्य जाकर भी जितनी जगहपर चाहते कब्जा कर लेते थे। यहां उनसे लड़नेके लिये कोई देश निवासी नहीं थे। कुछ जङ्गली जातियां कहीं कहींपर थीं पर वे इतनी असभ्य थीं कि इन नये आगंतुकोंसे लड़नेके लिये न उनके पास हथियार था, न उन्हें इसके लिये इच्छा थी न आवश्यकता। आस्ट्रेलिया जैसा महान देश अङ्गरेजोंके अधीन इसलिये आ गया कि भूला भटका एक अङ्गरेज नाविक वहां पहुंच गया। नयी दुनियाके सभी देशोंकी प्रायः यही अवस्था थी। इन नये देशोंका पता अङ्गरेजोंने नहीं दूसरोंने लगाया था। पर इन देशोंको पानेके लिये भी अङ्गरेजोंको वहांके निवासियोंसे नहीं बल्कि स्पेन, फ्रान्सीसी, डच और पोर्तुगीज जातियोंसे लड़ना पड़ा जो अङ्गरेजोंकी तरह यहां यूरोपसे ही आयी थीं। इनमेंसे प्रारम्भमें प्रत्येक जाति अङ्गरेजोंसे बली थी।

सीधी लड़ाईमें इनमेंसे कोई भी अङ्गरेजको हरा सकती थी। पर वे हार गये। इसका कारण यह हुआ कि यूरोपके अन्य राष्ट्र नयी दुनियाके देशोंमें उपनिवेश नहीं वसा सकते थे। सुदूर यूरोपसे इनका प्रवन्ध उन्हें करना पड़ता था। इसके विरुद्ध इङ्गलैण्ड उपनिवेश वसा सकता था क्योंकि इङ्गलैंडमें फैले हुए धार्म्मिक अत्याचारके कारण लोग भाग भागकर नये देशोंमें जा वसे थे। इसलिये इन नये देशोंमें इङ्गलैंडसे जब इनकी लड़ाई हुई तो इन औपनिवेशिकोंके कारण इङ्गलैंडको बड़ी सहायता पहुंची और इस प्रकार इङ्गलैंड यहां विजयी हो सका। इसके सिवा दूसरा जवरदस्त कारण यह था कि स्पेन, फ्रांस, हालैण्ड, पोर्तगाल पास पास थे और परस्पर एक दूसरे-के प्रतिद्वन्द्वी थे। इसलिये इनमेंसे जिस किसीको इङ्गलैंडसे लड़ना पड़ा वह सारी शक्ति नहीं लगा सका क्योंकि अन्य प्रतिद्वन्द्वियोंसे स्वयं अपनी रक्षाके लिये जवरदस्त फौज देशमें रखनी पड़ती थी। इङ्गलैंड समुद्रसे घिरे रहनेके कारण इस भयसे मुक्त था। साथ ही इन देशोंको केवल इङ्गलैण्डसे ही नहीं, आपसमें भी लड़ना था। इनके वीचकी लड़ाईमें अवसर देख इङ्गलैंड कभी एक ओर और कभी दूसरी ओर हो जाता था। और जब आपसमें लड़ते लड़ते स्पेन, पोर्तुगाल हालैंड और फ्रांसका सम्पूर्ण रूपसे बल टूट गया, वे थककर गिर पड़े तब इङ्गलैण्डकी वन आयी और अकेला रह जानेके कारण इनकी विखरी हुई सारी सम्पत्तिको उसने वटोर लिया। हां!

केवल एक हिन्दुस्थान है जो एक जनाकीर्ण और अति प्राचीन सभ्यताका देश है जिसपर अङ्गरेजोंने कब्जा किया। यह अवश्य ही एक आश्चर्यकी बात है। इसमें भी अङ्गरेजोंकी शक्तिका जौहर नहीं है, यह पाठकोंको पुस्तक पढ़नेसे मालूम हो गया होगा। अङ्गरेज हिन्दुस्थानमें तराजू बटखरा लेकर ही आये थे यद्यपि आज उनके हाथमें तलवार बन्दूक सब कुछ है। यहां भी उन्हें वही मौका हाथ लगा जो यूरोपके राष्ट्रोंकी परस्परकी लड़ाईसे लगा था। हिन्दुस्थानके भिन्न भिन्न राजा आपसमें लड़कर तबाह हो गये। हिन्दुस्थानकी राजश्री धूलमें लोट रही थी। ये राजा ऐसे थक गये कि इसे उठानेकी इनमें शक्ति नहीं थी इसलिये कुछ हिन्दुस्थानियोंकी मददसे अङ्गरेजोंने इसे अपने मस्तकपर चढ़ा लिया। यही इस साम्राज्य स्थापनाका मूलभूत कारण है। इङ्गलैण्ड अपनी शक्तिसे बहुत कम, पर दूसरोंकी फूट और निर्बलतासे बहुत अधिक बढ़ा है और उसकी यह शक्ति आज भी इसीपर अधिकांश निर्भर करती है।

पर ब्रिटेनके इस साम्राज्यके कारण हमें धोखेमें नहीं पड़ना चाहिये। वास्तवमें यह साम्राज्य उतना बड़ा नहीं है जितना दिखलाई देता है कैनेडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रिका और न्यू जीलैण्ड नामके लिये ही ब्रिटिश साम्राज्यके अधीन है। ब्रिटेनका उनपर कोई बल और शासन नहीं चल सकता। इङ्गलैण्डसे कार्य्यतः तो वे स्वतन्त्र ही हैं पर सिद्धान्ततः स्वतन्त्र होनेके लिये भी केवल उन्हें घोषणा कर देनी है कि हम स्वतन्त्र

हैं। आयरलैंण्ड इङ्गलैण्डसे अलग ही है यद्यपि पूर्ण रूपसे वह स्वतन्त्र नहीं हुआ है। पर यह निश्चय है कि वह अब ग्रेटब्रिटेनमें मिलाया नहीं जा सकता। मिश्रको स्वराज्य मिल गया है। यद्यपि यह वास्तविक स्वतन्त्रता नहीं है पर यह स्वतन्त्रता होकर ही रहेगी। प्रश्न केवल समयका है। इसलिये यह साम्राज्य ऊपरी धाक है। इसके भीतर केवल एक स्तम्भ हैं जो बहुत मजबूत है और जिसकी वजहसे ब्रिटिश साम्राज्यका साम्राज्य नाम सार्थक है। यह ३३ करोड़ मनुष्योंकी निवास-भूमि स्वयं अभागा हिन्दुस्थान है। यही ब्रिटिश साम्राज्यका गौरव है, यही इसकी जड़ है। साम्राज्यसे इसके निकलते ही इस साम्राज्यका महत्व लोप हो जायगा। वह कब होगा यह बात सामान्य तौरपर अनिश्चित है। पर यह होगा इसमें सन्देह नहीं।

